मन्थरज्वर-चिकित्सा

प्रकाशकः—

कुमार-प्रेस-बुकडिपो.

उत्तराधिकारी—

नवलकिशोर-प्रेस-बुकडिपो.

पोस्ट-बाक्स नम्बर ८४, हज़रतगंज, लखनऊ.

मध्य-प्रान्तीय आयुर्वेद-मंडल पंचम वैद्य-सम्मेलन, रायपुर में पठित

मन्थरज्वर-चिकित्सा
(TYPHOID)

लेखक,

कविराज पंडित हरिवल्लभ मन्नूलाल सिलाकारी,

शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, चिकित्सक-चक्रवर्ती

टाइफ़ाइड-स्पेशलिस्ट रजिस्टर्ड वैद्य इन्डियन मेडिसिनबोर्ड

ऑफ़ यू० पी० गवर्नमेन्ट

—:o:—

सम्पादक,

भगवतीप्रसाद पाण्डेय 'अनुज'

—:o:—

प्रकाशक,

तेजकुमार बुकडिपो

उत्तराधिकारी

नवलकिशोर-प्रेस-बुकडिपो,

लखनऊ.

—:o:—

द्वितीयावृत्ति]   सन् १९५० ई०   [मूल्य सजिल्द २)

समर्पण

श्रद्धेय, देवस्वरूप, प्रातःस्मरणीय, पूज्य पिता,

पंडित-प्रवर श्रीमन्नूलालजी सिलाकारी राजवैद्य

पूज्यवर,

आपकी पवित्रात्मा स्वर्गलोक में यह जानकर अवश्य प्रफुल्लित होगी कि आपके द्वारा प्राप्त आयुर्वेदीय उपदेश का उपयोग आपका अबोध पुत्र किस प्रकार कर रहा है। अतः यह पुष्पाञ्जलि, जिसमें आप ही की लगाई हुई फुलवाड़ी के फूल हैं, आपके चरण-कमलों में सादर, सप्रेम समर्पित है।

आपका स्नेहपात्र पुत्र—

वल्लभ

क्रम-संख्या २०

श्रीमध्य-प्रांतीय आयुर्वेद-मंडल पंचम वैद्य-सम्मेलन रायपुर से प्राप्त

प्रशंसा-पत्रम्

श्रीमान् हरिवल्लभजी सिलाकारी वैद्य-विशारद, कटनी-निवासी को सम्मेलन के अवसर पर शास्त्रोक्त रीति से रोगी की परीक्षा कर व्यवस्था देने तथा क्षय और मन्थर-ज्वर पर बुद्धिमत्तापूर्ण निबन्ध लिखने के उपलक्ष्य में एक रौप्य पदक और मध्य-प्रान्तीय आयुर्वेद-मंडल के पंचम वैद्य-सम्मेलन की स्वागत-समिति इस सम्मेलन-अधिवेशन में यह प्रशंसा-पत्र सादर, सप्रेम प्रदान करती है।

[ता० ३० नवम्बर १९३५ ई०]

डॉ० नरहर शिवराम परांजपे — सभापति— म०प्रा०आ०मं० ५ वैद्य-सम्मेलन.

सुभाग्यमल लुणीया — स्वागताध्यक्ष— म०प्रा०आ०मं०५ वैद्य-सम्मेलन,

कविराज रामनारायण हर्षुल आयुर्वेदाचार्य,

प्रधान मंत्री—

स्वा० स० म० प्रा० आयुर्वेद-मंडल ५ वैद्य-सम्मेलन, रायपुर।

दो शब्द

मेरे प्रिय मित्र श्रीयुत सिलाकारीजी के असीम उत्साह और प्रेम-मिश्रित शब्दों से प्रभावित होकर मैंने इस पुस्तक पर दो शब्द लिखने का महत्त्वपूर्ण कार्य लिया है। कार्याधिक्य के कारण समय अति स्वल्प प्राप्त हुआ है। इतने स्वल्प समय में लेखक के विचारों की वास्तविकता और उनकी लेखनी की कुशलता पर उचित पैमाने तक प्रकाश न डाल सकूँगा; इस "मन्थरज्वर-चिकित्सा" ग्रन्थ की उपयोगिता ही पाठकों के सामने रखकर अपनी लेखनी को विश्राम दूँगा।

वैद्यक शास्त्र के मतानुसार इस मन्थरज्वर पर अनेक विद्वानों के अनुभवपूर्ण लेखनी से कतिपय लेख निकल चुके हैं। उनमें से अधिकांश लेख मैंने भी पढ़े हैं। मैं स्वयं भी अपने दीर्घकालीन अनुभव के बाद इस मन्थरज्वर पर अपने निश्चित विचार रखता हूँ। उन्हें यहाँ उपस्थित करना एक नवीन पुस्तक-निर्माण करने के समान हो जावेगा। अतः यहाँ इतना ही लिख देना पर्याप्त है कि श्रीसिलाकारीजी के अधिकांश विचार, जो इस पुस्तक में लिपिबद्ध हैं, मेरे विचारों से साम्य रखते हैं। इस पुस्तक से मेरे ही नहीं, उन सभी वैद्य महानुभावों से विचारसमता रहेगी, जिन्हें मन्थर-ज्वर की साध्य, कष्टसाध्य और असाध्य सभी अवस्था में

चिकित्सा करने का अधिक अवसर प्राप्त हुआ है। यह पुस्तक वैद्यकव्यवसाय में प्रारंभिक चिकित्सकों के लिए विशेष लाभप्रद तथा सहायक सिद्ध होगी; क्योंकि मन्थरज्वर जैसा इसका नाम है वैसा इसका अनुभव भी दीर्घकालीन है। मन्थरज्वर का अर्थ है "मन्थर-गति" से (धीरे-धीरे) चढ़ने और उतरनेवाला ज्वर। इस ज्वर में ज्वर का ताप उतरने पर भी शरीर का ताप प्राकृतिक अवस्था से एक-दो डिग्री अधिक ही रहता है और इसकी वृद्धि तथा स्थिरता भी क्रमशः और चिरस्थायी रहती है।

रामायण की मन्थरा से इस ज्वर की बड़ी समता है। रामायण की मन्थरा राजघातक सिद्ध हुई तो यह मन्थरज्वर प्राणघातक सिद्ध है। इस मन्थर-ज्वर में रोगी को "राम" के समान त्यागी अर्थात् जितेन्द्रिय (पथ्यसेवी) होना चाहिए और रोगी के संरक्षकों को कौशल्या और सुमित्रा के समान धैर्यवान् तथा परिचारिका या सेवक को सीता और लक्ष्मण के समान रोगी का प्रेमानुरागी एवं कर्त्तव्यपरायण होना चाहिए। इतना ही नहीं, वैद्य को भी भरत के समान साहसी, निर्मोही, कष्टसहिष्णु, गंभीर और स्थिर-प्रकृति का होना चाहिए। दशरथ की वृत्ति धारण करने-

वाले मन्थरज्वर रोगी को प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा और कैकेयी की वृत्ति धारण करनेवाले परिचारक तथा वैद्य आदि को अपकीर्ति का भागी बनना पड़ेगा।

यदि दशरथ में राम का मोह न होता तो उनका असमय में प्राणान्त न होता। यदि कैकेयी अपने कर्तव्य से च्युत होकर राज्य लेने की अनधिकार चेष्टा न करती तो वह कदापि वैधव्य और अपकीर्ति न प्राप्त करती। इसी प्रकार रोगी में अपथ्य त्याग करने की शक्ति यदि वर्तमान न रहेगी तो वह मन्थरज्वर से कदापि न बच सकेगा। वैद्य तथा परिचारक यदि कैकेयी के समान कर्त्तव्यच्युत होकर समयानुकूल बुद्धि को त्याग दें तो रोगी का जीवन संकट में पड़ जावेगा और उसे प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। अतः इस रोग में औषधि के अतिरिक्त रोगी, परिचारक और वैद्य के उत्तम पात्र होने पर सफलता की विशेष आशा रहती है। इस पुस्तक में रोग की भीषणता को ध्यान में रखकर लेखक ने अपनी दीर्घकालीन चिकित्सानुभव को हिन्दी-भाषा में लिपिबद्ध कर इस पुस्तक को लोकोपयोगी बनाने का भरसक प्रयत्न किया है, जिससे वैद्यों के अतिरिक्त गृहस्थ भी इससे समान लाभ उठा सकें। इस पुस्तक में मन्थरज्वर का पर्यायवाचक

नाम, कारण, सम्प्राप्ति, लक्षण, मल-मूत्र-जिह्वा आदि की परीक्षा का वर्णन कर सरल और सुन्दर योगों द्वारा चिकित्सा वर्णित है। इतना ही नहीं, सफलता प्राप्त रोगियों का इतिहास-सहित निदान तथा चिकित्सा भी अंकित किये गये हैं। इस पुस्तक में जो कुछ भी लिखा गया है, वह इस भयंकर रोग के लिए सम्पूर्ण अंशों में भले ही पर्याप्त न हो, किन्तु अधिकांश भाग अनुभव की कसौटी में कसकर ही लिपिबद्ध किया गया है। अतः इस पुस्तक में जो कुछ भी है, वह मन्थरज्वर से बचने के लिए सुन्दर, सरल और आवश्यकीय उपयोगी साधनों से पूर्ण है।

पुस्तक की लोकोपयोगिता को ध्यान में रखकर मध्यप्रान्तीय पंचम वैद्य-सम्मेलन रायपुर ने, पुस्तक-प्रणेता प्रान्त के प्रसिद्ध विद्वान्, वैद्यवर श्रीसिलाकारीजी को प्रमाण-पत्र तथा रौप्य-पदक प्रदान किया है।

आशा है कि यह पुस्तक सर्वसाधारण के लिए स्वास्थ्योपयोगी सिद्ध होगी।

विनीत

कविराज रामनारायण हर्षुल
आयुर्वेदाचार्य,
मंत्री—
मध्यप्रान्तीय पंचम वैद्य-सम्मेलन।

रायपुर म० प्रा०
ता० ५।१२।३५ ई०

निवेदन

टाइफ़ाइड या मन्थरज्वर एक ऐसा राक्षस है, जो मानव-जीवन का भयङ्कर शत्रु है। जो मनुष्य इस रोग के ंगुल में फँस जाता है, वह कदाचित् ही बचता है; और बचता भी है, तो उसे हफ़्तों ही नहीं, कभी-कभी महीनों असह्य यंत्रणा सहनी पड़ती है। वास्तव में यह जन-श्रुति सत्य है कि मन्थरज्वर से त्राण पानेवाले मनुष्य का पुनर्जन्म होता है। हमें स्वयं इस रोग का कटु अनुभव प्राप्त हुआ है और हमारे तीन बच्चे इसी के कोप से काल-कवलित हो चुके हैं; यद्यपि उनकी चिकित्सा नामाङ्कित चिकित्सकों द्वारा हुई थी। इसी वर्ष की बात है। हमारी दो पुत्रियाँ मन्थरज्वर में ग्रसित हो गई थीं। रोग ने क्रमशः इतना भयानक रूप धारण कर लिया था कि हम उनके जीवन से सर्वथा निराश हो चुके थे। अन्त में हमने उनकी चिकित्सा का दायित्व भार्गव-कुल-भूषण वैद्यवर पं० हरिवल्लभजी सिलाकारी को सौंपा। आपने तीन मास से अधिक समय तक अत्यन्त योग्यतापूर्वक उनकी चिकित्सा की और हमें यह लिखते हुए हर्ष होता है कि आपके चिकित्सा-कौशल से दोनों पुत्रियाँ शनैः-शनैः पूर्णतया नीरोग हो गईं।

पं० हरिवल्लभजी नित्य ही बच्चियों की देख-भाल करते

थे और मन्थरज्वर के विषय में आपसे बहुधा हमारा वार्त्तालाप हुआ करता था। बातों-ही-बातों में हमें विदित हुआ कि आपने इस रोग के सम्बन्ध में विशेष अध्ययन किया है, और एक ग्रन्थ भी लिखा है, जिसका मूलाधार आपका स्वयं का अनुभव ही है। हमारी उत्कण्ठा पर आपने कृपापूर्वक उसकी पाण्डु-लिपि हमें दिखलाई। हमने आद्योपान्त उसका अवलोकन किया, और उससे हमें हार्दिक सन्तोष हुआ। हम निस्सङ्कोच भाव से यह कह सकते हैं कि आपका यह ग्रन्थ सर्वथा मौलिक और नवीनताओं से परिपूर्ण है। अर्वाचीन तो क्या, प्राचीन वैद्यक साहित्य में भी टाइफ़ाइड या मन्थरज्वर का साङ्गोपाङ्ग अथवा समुचित वर्णन नहीं पाया जाता। ऐसी परिस्थिति में "मन्थरज्वर-चिकित्सा" के रचयिता को स्वयं अपना पथ निर्मित करना पड़ा है, और आपने अत्यन्त अध्यवसाय से उसका निर्माण किया है। निस्सन्देह हरिवल्लभजी के लिए यह गौरव का विषय है कि जहाँ हमारे पीयूष-पाणि भिषग्-रत्न प्राचीनता के गीत गाने में व्यस्त रहते हैं, वहाँ आपका मस्तिष्क नवीनता का अनुसन्धान करने के लिए उद्योग-रत रहता है। अतएव आपका यह ग्रन्थ-रत्न स्थल-स्थल पर आपके अनुसन्धान की ज्योति से समुद्भासित हो रहा है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि आपने मन्थरज्वर-विषयक अपने अपूर्व अनुभव निष्कपट भाव से इस ग्रन्थ में ग्रथित कर दिये हैं। क्या अमीर और क्या ग़रीब सभी इस ग्रन्थ से अधिकाधिक लाभान्वित हो

सकें—केवल इसी पुण्यमयी प्रेरणा से आपने इस ग्रन्थ में मन्थरज्वर का शमन करनेवाली अपूर्व एवं स्वल्प मूल्यवाली ओषधियों की यथेष्ट योजना कर दी है। उनके प्रस्तुत करने की विधि भी ऐसी सरलतापूर्वक बतलाई और समझाई गई है कि साधारण पढ़े-लिखे जन भी उन्हें बिना किसी कठिनाई के प्राप्त कर सकेंगे और उपयोग में भी ला सकेंगे। इन्हीं सब कारणों से यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्व-पूर्ण हो गया है और कदाचित् इसी से मध्यप्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन द्वारा भी भली भाँति समादृत हुआ है।

दीन-हीन भारतवर्ष में अन्य रोगों के समान मन्थरज्वर भी दिनोंदिन भयानक रूप धारण कर रहा है। आए दिन अगणित मनुष्य इसके द्वारा पीड़ित होते और मृत्यु के ग्रास बनते हैं। योग्य चिकित्सा के अभाव में मरनेवालों की बात जाने दीजिए; कभी-कभी तो यहाँ तक देखा जाता है कि नामाङ्कित चिकित्सक विद्यमान है, रोगी मन्थरज्वर की असह्य वेदना से छटपटा रहा है, और चिकित्सक महोदय को रोग की पहिचान भी नहीं हो रही है। ऐसी परिस्थिति में वैद्यवर पं० हरिवल्लभजी सिलाकारी ने "मन्थरज्वर-चिकित्सा" लिखकर मानव-समाज का अशेष कल्याण किया है। हमारा विश्वास तो यह है कि यह ग्रन्थ किसी भी मन्थरज्वरग्रस्त व्यक्ति के लिए एक सुयोग्य चिकित्सक के समान लाभदायक प्रमाणित होगा। अतएव प्रत्येक पढ़े-लिखे गृहस्थ के पास इसकी एक प्रति का रहना आवश्यक

है। मन्थरज्वर का प्रकोप होते ही वह इसकी सहायता से अपने प्रिय जनों की प्राण-रक्षा कर सकेगा—और सो भी बड़ी सरलतापूर्वक एवं केवल कौड़ियों के स्वल्प व्यय से। यदि इस दृष्टि-कोण से हम "मन्थरज्वर-चिकित्सा" के अधिकाधिक प्रचार की आशा करें, तो उचित ही है। अस्तु!

वैद्यवर पं० हरिवल्लभजी सिलाकारी ने "मन्थरज्वर-चिकित्सा" लिखकर और अध्यक्ष नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ ने इसका प्रकाशन कर जो पुण्य-कृत्य किया है, उसके लिए वे जनता की ओर से सर्वथा धन्यवाद के पात्र हैं।

सागर, म० प्र०
दीपावली
सं० १९९५ वि०

ज़हूरबख़्श

———

आरम्भिक वक्तव्य
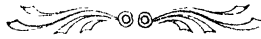
आयुर्वेद की उत्पत्ति तथा क्रमिक विकास अथर्ववेद और कौशिक सूत्र के आधार पर अनेक शताब्दी पहिले क्रमपूर्वक भारतवर्ष में हुआ है। आचार्य चरक ऋषि का मत है कि अन्यान्य वेदों की अपेक्षा अथर्ववेद से आयुर्वेद का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी प्रकार आचार्य सुश्रुत ऋषि ने भी आयुर्वेद को अथर्ववेद का एक अङ्ग माना है। अन्यान्य आचार्य इसे पंचम वेद भी मानते हैं। भारतीय आर्य ऋषियों ने आयुर्वेद का निर्माण संस्कृत-भाषा में किया है। एक तो आयुर्वेद-शास्त्र गंभीर है ही, उस पर संस्कृत-जैसी क्लिष्ट भाषा में होने से यह अधिक दुरूह और अगम्य हो गया है। "कालस्य कुटिला गतिः" के अनुसार काल के परिवर्तन होने से संस्कृत का पठन-पाठन सर्वव्यापक नहीं रहा, अतएव आयुर्वेद-शास्त्र की गंभीरता और अनेक स्थलों की जटिलता के कारण सर्वसाधारण समाज इससे पूर्णतया लाभान्वित नहीं हो सकता। कोई कठिन विषय कभी भी लोक-प्रिय नहीं हो सकता। अतः आयुर्वेद-जैसे सर्वोप-योगी शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए इने-गिने पुरुष ही उद्यत होते हैं। वर्तमान समय में संस्कृत-भाषा, जो आर्य-संस्कृति (सभ्यता) की रक्षक एवं अनेक प्रचलित भाषाओं की जन्म-दात्री है, असाध्य व्याधि द्वारा ग्रसित होकर प्रायः मरणोन्मुखी हो रही है, और उसकी पुत्री हिन्दी अपनी सरलता के कारण प्रतिदिन अधिक प्रचलित ही नहीं, अपितु राष्ट्रभाषा होने जा रही है। किन्तु हमें उन पूर्वाचार्यों का चिरकृतज्ञ होना चाहिए,

जिन्होंने कि संस्कृत-जैसी जटिल भाषा में आयुर्वेद-विषयक अत्यन्त सुन्दर, सदुपयोगी तथा सजीव साहित्य-निर्माण किया है। आधुनिक शल्यचिकित्सा का निर्माण आर्य-आयुर्वेद के आधार पर ही हुआ है, जिसके लिए यूरोप भारत का ऋणी है। पाश्चात्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर बीवर साहब कहते हैं—

"ऐसा प्रतीत होता है कि वैद्यक शास्त्र का बड़ी बुद्धिमानी से प्रयोग किया गया है। वैद्यक ग्रन्थों और उनके बनाने-वालों की संख्या बहुत बड़ी है। आयुर्वेद-चिकित्सा-प्रणाली सबसे प्राचीन है। इसकी शिक्षा बड़े विद्वान् हिन्दू-प्रसिद्ध-वैद्य धन्वन्तरि ने अपने शिष्य सुश्रुत को दी थी। अस्त्र-चिकित्सा में भी भारतवासी बहुत निपुण हो गये थे। संभव है कि इस शाखा में यूरोपियन चिकित्सक आजकल भी कुछ न कुछ उनसे सीख सकते हों; क्योंकि उन्होंने नाक बनाने की विद्या भारतीयों ही से सीखी है।"

इसी प्रकार कलकत्ता मेडीकल कॉलेज के प्रिन्सिपल डॉक्टर ल्युकिस एम० डी०, एफ० आर० सी० का कथन है—

"हिन्दुस्तानी लोगों से हमें वैद्यक-शास्त्र और औषधि के विषय में बहुत-सी बातें सीखने के लायक हैं।"

इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों के आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा-उत्पादक अनेकों मत प्राप्य हैं, अस्तु! इस समय संस्कृत-भाषा की क्लिष्टता ने आयुर्वेद की आवश्यकीय उपयोगिता और महत्ता को कुछ परिमित-सा कर दिया है, एतदर्थ मैंने इस पुस्तक को भारत की उन्नतिप्रद प्रचलित तथा सर्वसाधारण में व्यवहृत भाषा हिन्दी में लिखा है, ताकि पुस्तक का प्रचार प्रत्येक नगर से लेकर ग्राम ग्राम में पर्याप्तरूप से हो सके।

यद्यपि पुस्तक की भाषा कुछ कठिन है तथा यत्र-तत्र स्थानों में विषय की प्रामाणिकता सिद्ध करने के हेतु संस्कृत

श्लोकों का उल्लेख अवश्य आया है; परन्तु उसका भावार्थ हिन्दी-भाषा में कर दिया गया है। प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में अर्वाचीन प्रचलित व्याधियों का वर्णन प्रायः मिलता ही नहीं। हाँ, नवीन ग्रन्थ म० म० कविराज श्रीगणनाथ सेन सरस्वती-कृत सिद्धान्तनिदान आदि में अवश्य कुछ विवेचन मिलता है, तथापि हिन्दी में ऐसे ग्रन्थों का अभाव ही है। मेरी इच्छा आज से आठ वर्ष पूर्व आयुर्वेद के संदिग्ध रोगों पर छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ लिखने की थी, और "विषूचिका-विवेचन" नामक पुस्तक की रचना भी की थी, जो अनेक कारणवश अभी तक अप्रकाशित है। "मन्थरज्वर की अनुभूत चिकित्सा" नामक पुस्तक स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य महोदय ने भी लिखी है, जिसका अधिकांश भाग केवल कीटाणुवाद के समर्थनमात्र में और अप्रासंगिक विषय को बढ़ाकर समाप्त हुआ है। धन्वन्तरि पत्र के विशेषाङ्क में अवश्य अनेक विद्वानों की चिकित्सा मन्थरज्वर पर संक्षिप्त रूप से पढ़ने में आई। मैंने भी सन् १९३४ में राकेश के सिद्धोपचार-पद्धति-नामक विशेषाङ्क में "मन्थरज्वर-चिकित्सा"-शीर्षक लेख लिखा। प्रस्तुत पुस्तक में इसी लेख द्वारा उद्धृत रोगी-रजिस्टर के उदाहरण संकलित किये हैं, जिसमें चार नवीन रोगियों के उदाहरण और सम्मिलित हैं।

आर्य-ऋषियों का तपोवन भारतवर्ष आरोग्य और आत्म-बल के लिए विश्वविख्यात था। कहा भी है—

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत"

[अथर्ववेद]

ब्रह्मचर्य तथा तप से देवताओं ने मृत्यु को पराजित किया था। किन्तु पराधीन भारत आज पाश्चात्य कृत्रिम व्याधियों का केन्द्र बन गया है। इसका प्रधान कारण है हमारी अकर्मण्यता और आयुर्वेदीय आरोग्यरक्षक दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्यादि

नियमों की अवहेलना करना। फलस्वरूप वैदेशिक चिकित्सा का प्रसार हो रहा है। महर्षि आत्रेय का वचन है—

यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम्।

जिस प्राणी का जन्म जिस देश में हुआ है, उसी देश की ओषधियाँ उस प्राणी के लिये हितप्रद हो सकती हैं। पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली के रंग में रँगा हुआ आधुनिक समाज वैदेशिक चिकित्सा-शैली का अनुयायी हो रहा है। महर्षि आत्रेय के विज्ञानयुक्त अभिमत की अवहेलना करने का दुष्परिणाम सहन करना तो उचित समझते हैं, किन्तु भारतीय चिकित्सा का अवलम्ब लेना अनुचित बतलाते हुए अविश्वास प्रकट करते हैं। यद्यपि हम यह प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं कि भारतवर्ष साम्प्रत अवस्था में किस प्रकार आर्थिक संकट का सामना कर रहा है, तथापि हम सामान्य व्याधियों के होते ही डॉक्टर साहब को बुलाकर इञ्जेक्शन लगाने के लिये कहते हैं और अधिक मूल्यवान् पाश्चात्य ओषधियों का व्यवहार करने में अपने को बुद्धिमान् समझते हैं। आर्य-आयुर्वेदीय चिकित्सा के समक्ष पाश्चात्य चिकित्सक—अनेक व्याधियाँ ऐसी हैं जिनमें—अवश्य असफल होते पाये गये हैं, जैसे.......सन्निपात, संग्रहणी, प्रसूत आदि। इनमें आयुर्वेदीय चिकित्सक ही प्रतिशत आरोग्य लाभ पहुँचाकर यशस्वी होते हैं। ऐसे एक नहीं, अपितु अनेकों अवसर आये हैं, जिनका अनुभव सैकड़ों परिवार प्रति मास करते हैं। मन्थरज्वर इक्कीस दिन की अवधि पूर्ण कर आरोग्य होनेवाली सान्निपातिक व्याधि है। यदि इसमें पाश्चात्य चिकित्सा आरम्भ हुई तो द्रव्य का अपव्यय होने के अतिरिक्त रोगी का जीवन संकटापन्न अवस्था में पड़ जाता है। परन्तु अनेक वैद्य-बन्धु मन्थरज्वर के इतने सिद्धहस्त चिकित्सक हैं कि केवल ज्वर-शामक क्वाथ जैसे इसी पुस्तक में आगे वर्णित मन्थरज्वरहरक्वाथ, मन्थरज्वरारि वटी

अथवा एकमात्र लंघन एवं लवंगक्वाथ का प्रयोग कर निःशुल्क किंवा निर्विघ्न निश्चित अवधि के अन्तर्गत अवश्य आरोग्यता प्रदान कर आयुर्वेद की विजयपताका फहराते हैं।

यह है सर्वसुलभ आर्य-आयुर्वेदीय चिकित्सा-विज्ञान का चमत्कार। विद्वान् वाचकवृन्द स्वयं विचार करें कि इस अर्थाभाव के युग में क्या आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रचार का आन्दोलन होना अनिवार्य नहीं है। पुस्तक के महत्वपूर्ण अंशों पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है, अतएव आरम्भ में मन्थरज्वर का विवेचन और अन्य व्याधियों में इसकी साम्यता प्रदर्शित की गई है; पश्चात् अनुभव में दृष्टिगत हुए साप्ताहिक लक्षण, दोषज्ञानार्थ नाड़ी-परीक्षा, थर्मामीटर द्वारा ज्वर के साप्ताहिक संताप-क्रम का वर्णन, जिह्वा, नेत्र, मूत्र, मल-परीक्षा का उल्लेख है। तदुपरान्त साप्ताहिक चिकित्सा, उपद्रवों का उपचार, निर्बलता-निवारक ओषधि, रोगी-रजिस्टर द्वारा उद्धृत उदाहरण, इन स्तम्भों में मैंने अपने द्वादशवर्षीय चिकित्सा के प्रत्यक्ष अनुभव का स्पष्ट वर्णन किया है, जो सर्वथा मौलिक विषय है।

इससे प्रत्येक वैद्य एवं गृहस्थ-समुदाय अपने मन्थरज्वर-पीड़ित रोगी की व्यवस्थित चिकित्सा करके सावधानी से सफलता-सहित आरोग्यता प्रदान कर आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। मध्यप्रान्तीय पंचम वैद्य-सम्मेलन रायपुर के प्रधान स्वागत-मंत्री प्रचारार्थ कटनी पधारे और उन्होंने साग्रह अनुरोध कर कहा कि आप स्वागत-समिति के निर्वाचित विषयों पर, जिसके आप विशेषज्ञ हों, अनुभवपूर्ण लेख लिखने की कृपा करेंगे। एतदर्थ मंत्री महोदय की आज्ञापालन करना अपना कर्तव्य समझकर क्षय तथा मन्थरज्वर पर निबन्ध लिखे, जिसमें मन्थरज्वर का निबन्ध तो पुस्तकरूप में परिणत हो गया। दोनों निबन्ध लेकर रायपुर रवाना हुआ और वैद्य-

सम्मेलन में निबन्ध पढ़े। फलस्वरूप उपस्थित वैद्यों ने इन्हें पसन्द किया और निबन्ध-निर्णायक-समिति ने प्राप्त हुए निबन्धों में इसे सर्वोत्तम निश्चित कर रौप्य पदक तथा प्रशंसा-पत्र प्रदान किया। प्रान्त के सहयोगी विद्वान् वैद्यों ने एवं कटनी के मित्र-मंडल ने, जिनमें विशेष उल्लेखनीय नाम मेरे परम मित्र बाबू शारदाप्रसादजी अग्रवाल ऐडवोकेट का है, जिन्होंने निबन्ध की उपयोगिता बतलाकर प्रकाशित कराने के लिए बाध्य किया। अतएव जनता के हितार्थ अपने परम्परागत गुप्त प्रयोगों-सहित यह निबन्ध पुस्तकरूप में प्रकाशित होकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

मेरा विचार है, कठिन व्याधियों पर आयुर्वेदीय चिकित्सा की छोटी-छोटी पुस्तकें लिखकर प्रत्येक परिवार में पहुँचा दूँ, ताकि आयुर्वेद-शास्त्र का वास्तविक प्रचार होने के साथ-साथ हमारे धन, धर्म और प्राणों की रक्षा हो सके। इन सब विचारों की पूर्ति के लिए आवश्यकता है श्रीमानों तथा प्रकाशकों के इस ओर ध्यान देने की। आज परमात्मा की अपार अनुकम्पा द्वारा अपने विचारों की पूर्ति के प्रथम प्रयास में सहायता प्रदान करने-वाले श्रीमान् अध्यक्ष नवलकिशोर-प्रेस का अधिक आभार स्वीकार करता हूँ। साथ ही पुस्तक की पाण्डुलिपि का अवलोकन कर जिन विद्वानों ने अपनी अमूल्य सम्मति प्रदान करके उत्साह-वृद्धि की है, उन्हें भी कोटिशः धन्यवाद देता हूँ।

श्रीवैकुण्ठधाम-आश्रम,
हरिद्वार,
ज्येष्ठ कृष्ण १ प्रतिपदा
१९९४ वि०

विनीत—
कविराज हरिवल्लभ मन्नूलाल
सिलाकारी

विषय-सूची

औषधियों में आये हुए रसादि द्रव्यों का शोधन विधान—

मन्थरज्वर-चिकित्सा

मन्थरज्वर

इसको संस्कृत में मन्थरज्वर, मौक्तिकज्वर, मधुर-ज्वर, आन्त्रिकज्वर, संशोषी सन्निपात; हिन्दी में मोती-झिरा, मँदरा, मातीज्वर; मारवाड़ी में मोतीझरा, मधुरा; महाराष्ट्र में मधुरा, विषमज्वर; उर्दू में मुहरिक़ा इस्हाली; अरबी में हमीउलमुहरिक़ा, या हमीक़ा; फ़ारसी में तपे मुबारक तथा हुम्मा मुतविक़ा मुतनाक़िज़ा; अंग्रेज़ी में टाईफ़ाइड फ़ीवर (Typhoid Fever) तथा एन्ट्रिक फ़ीवर; लैटिन, फ्रेंच या ग्रीक भाषा में स्कार्लेटीन् ज़िनोसा फ़ीवर (Scarletine Zenosa Fever) कहते हैं।

मन्थरज्वर का इतिहास

मन्थरज्वर का वर्णन आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता। तथापि मुसलमानी शासनकाल में जिन आयुर्वेदिक ग्रन्थों का निर्माण हुआ है, प्रधानतया योगरत्नाकर तथा निदानदीपिका, उनमें मन्थरज्वर का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है। इतिहास के पढ़ने से पता चलता है कि यह व्याधि हमारे यहाँ मुसलमानों के शासनकाल में उनके साथ ही साथ यहाँ आई। इसके पूर्व यूनान, अरब, मिस्र, फ़ारस आदि देशों की यह प्राचीन व्याधि है और वहाँ यह अधिकता से होती थी। हमारे देश में जो यूनानी इलाज चालू है, वह यूनान या अरब देश का है। इसके जो ग्रन्थ उर्दू में मिलते हैं, उनमें मन्थरज्वर का कोई ऐतिहासिक उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु अरबी भाषा के ग्रन्थों में इस व्याधि का विशद वर्णन मिलता है। अरब के सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध हकीम जालीनूस अपने तिब्रास नामक ग्रन्थ में इसका ऐतिहासिक वर्णन करते हुए लिखते हैं—"यह व्याधि मेरे देखते-देखते अरब में कई बार फैल चुकी है।" आगे इसकी प्राचीनता का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—"इसका पता एक हज़ार वर्ष पूर्व से मिलता है।" जालीनूस के इस सिद्धान्त द्वारा यह स्पष्ट होता है कि मन्थरज्वर का ज्ञान आज से लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व का है। यह परिज्ञान नहीं होता कि सर्वप्रथम यह व्याधि किस देश में और कब देखी

गई। परन्तु इतना निश्चित हो चुका है कि मन्थरज्वर अरब और यूनान देश की पुरातन व्याधि है तथा वहाँ से शनैः-शनैः सारे संसार में व्याप्त हो गई।

भारतवर्ष में आगमन

भारत में मन्थरज्वर का आगमन मुसलमानों के आने से ठीक उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार डचों के आगमन से फ़िरंगोपदंश एवं सूज़ाक का प्रादुर्भाव हुआ।

मन्थरज्वर का प्रादुर्भाव

मन्थरज्वर का प्रादुर्भाव प्रायः वसन्त ऋतु में अधिक होता है और ग्रीष्म ऋतु तक रहता है। मैंने अगस्त से नवम्बर मास पर्यन्त शरद् ऋतु में, जब पित्त का प्रकोप होता है तब, यह व्याधि विशेषतया फैलती हुई देखी है।

हकीम जालीनूस का मत है कि यह व्याधि वसन्त ऋतु में ही होती है। वह लिखते हैं—"एक बार यह व्याधि वसन्त ऋतु के आगमन के साथ-साथ उत्पन्न हुई और थोड़े ही दिनों में सारे अरब प्रान्त में फैल गई। हज़ारों बच्चे इस रोग से घिर गये। कोई-कोई बड़ी उमरवाला भी बीमार देखा गया। इस व्याधि पर यहाँ के हकीमों का बहुत कम अनुभव था, इसीलिये वह इसे उदर का रोग समझकर रेचन औषधि का प्रयोग करते थे। इसका परिणाम बहुत बुरा होता था। अनेकों बच्चे बिना मौत मर जाते थे। मैंने इस व्याधि के रूप को खूब जाँचा और मालूम किया। व्याधि का प्रभाव

प्रायः छोटी आँतों की झिल्ली में होता है। यदि इसमें विरेचन की ओषधि दी जाय तो आँतों की झिल्ली में खराश (प्रदाह) उत्पन्न हो जाता है। इससे न रुकने-वाले रेचन आने लगते हैं। इसीलिए मैंने कभी रेचन ओषधि नहीं दी। मैं प्रायः दोषशामक व पाचक औषधों का प्रयोग कर रहा हूँ।"

मध्यप्रान्त में भी इसका प्रकोप वसन्त ऋतु के आगमन समय में ही देखा जाता है। कुछ काल से इसका यह अनुक्रम अनियमित हो गया है। अजमेर, अमृतसर, लाहौर, लखनऊ-जैसे शहरों में तो हमेशा हर मौसम में कुछ-न-कुछ इस व्याधि का सिलसिला लगा ही रहता है।

मन्थरज्वर और जीवाणुवाद

पाश्चात्य चिकित्सक इसकी उत्पत्ति एक प्रकार की विषैली वायु टौक्सिन प्वायज़न (Toxin Poison) द्वारा मानते हैं, जो कि अजीर्ण आदि के रहने पर रक्त को दूषित करके अन्त्रावयवों में पिडिका तथा ज्वर उत्पन्न करती है। अन्य विद्वान् टाइफ़ाइड बैसीलस (Typhoid Bacillus) नामक जीवाणु को मन्थरज्वर की उत्पत्ति का कारण मानते हैं और इसकी गणना संक्रामक व्याधियों में करते हैं। कारण यह कि ये जीवाणु रोगी के मल, मूत्र, वमन और कफ में मिलते हैं। भोजन या जल द्वारा स्वस्थ शरीर में प्रवेश करते हैं। यह अनेक रोगियों के मल में बीमारी के पश्चात् भी वर्षों मिलते हैं। इस

व्याधि का संक्रमण, रोगी के चिकित्सक, परिचारक एवं रोगी के वस्त्रादि और अन्न-पानादि के सम्पर्क अथवा रोगी के मल-मूत्रादि परमाणुवाहक मक्खी आदि द्वारा, स्वस्थ मनुष्यों में भी हो जाया करता है।

उन विद्वानों का यह भी कथन है कि यह रोग, टाईफाइड बैसीलस इवर्थ का कीटाणु, मनुष्य की आँतों में प्रवेश करता है और आँतों की रस-स्रावक झिल्ली के प्रदाह होने से उत्पन्न होता है। ज्वर के साथ ही कभी-कभी रक्तातिसार भी हो जाया करता है।

जब तक सूक्ष्म जीवाणुओं का परिज्ञान नहीं हुआ था, तब तक संचारी और असंचारी कोई भी व्याधि हो देश, काल, जल, वायु, खाद्य, पेयजन्य दोष ही इनकी उत्पत्ति के प्रधान कारण समझे जाते थे। किन्तु १८६२ ईसवी में लुई पाश्चर नामक वैज्ञानिक ने सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा सूक्ष्म वस्तुओं का निरीक्षण करते-करते ऐसी सूक्ष्म-वस्तुओं को देखा जो इधर-उधर गतिशील थीं। प्रयत्नपूर्वक देखने से उसे पता लगा कि यह भी जानदार सजीव सृष्टि है, जो हमारी दृष्टिशक्ति से परे है।

इतनी सूक्ष्म, सजीव सृष्टि को देखकर उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। लुई पाश्चर की उत्सुकता इस ओर बढ़ गई, और बड़ी सावधानी से वह इनका निरीक्षण करने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि उसको इस सूक्ष्म गतिशील संसार में एक नहीं, अपितु अनेकों जाति की सूक्ष्म सजीव सृष्टि

दृष्टिगोचर हुई। खोज करते रहने पर कुछ वर्ष बाद यह ज्ञात हुआ कि कई व्याधियाँ इन जन्तुओं के कारण से उत्पन्न होती हैं। उसका केवल ऐसा अनुमानमात्र नहीं था, प्रत्युत इस बात को उसने अपने प्रयोगों में प्रत्यक्ष देखा था। उसको कई व्यक्तियों के शरीर में कई व्याधियों के सूक्ष्म जीवाणुओं का पता लगा। इस सम्बन्ध में खोज करते-करते उस वैज्ञानिक ने कई व्याधियों के मूल कारण का 'जैव सिद्धान्त' नामक सिद्धान्त स्थिर कर यह बतलाया कि अनेक व्याधियों के कारण जन्तु ही हैं, तथा १८८३ ईसवी में जाकर उसने बतलाया कि मन्थरज्वर भी एक प्रकार के जीवाणुओं से उत्पन्न होता है। जिस समय मन्थरज्वर के कीटाणुओं का आविष्कार हुआ, उसी समय से इस व्याधि की वास्तविक स्थिति का ज्ञान संसार को हुआ।

कीटाणुओं का वर्ग, श्रेणी तथा जाति

मन्थरज्वर के कीटाणु स्थावर वर्ग के हैं। इनकी शारीरिक बनावट शलाकाकृति श्रेणी की है। इसमें से मकराकृति शलाका इनकी जाति कहलाती है अर्थात् इनकी शारीरिक बनावट शलाकाकृति है और उस शलाका में चारों ओर मकड़ी के हाथ, पैर-जैसे तन्तुजाल निकले रहते हैं, जिससे इन कीटाणुओं का नाम मकराकृतिशलाका निर्धारित किया गया है।

मन्थरज्वर के कीटाणु.
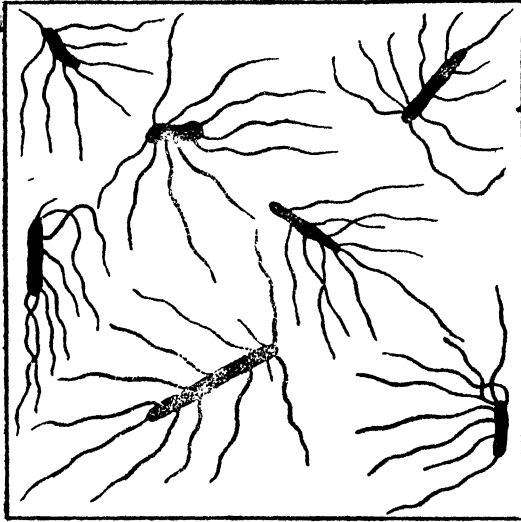
[यह कीटाणु लम्बा और गतिशील होता है। यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो इसके शरीर से सूक्ष्म बाल-जैसे निकलते हुए दिखलाई देंगे। इन बालों की संख्या प्रायः ६ से १० तक की होती है तथा इन्हीं बालों से कीटाणु चलता फिरता है। मन्थरज्वर के उपरान्त यह कीटाणु रोगी के शरीर में अधिक समय तक भी रह सकता है। अनेक मनुष्यों के मल अथवा मूत्र में मन्थरज्वर आक्रमण के कई वर्ष बाद तक कीटाणु मिला करते हैं। यह कीटाणु मन्थरज्वर आगमन के उपरान्त कभी-कभी उदरान्त्र (अँतड़ियों) से अस्थि आदि में पहुँचकर पूय (पीव) पैदा कर देते हैं। कभी-कभी कई वर्ष बाद कीटाणुओं से पूय उत्पन्न होते पाया गया है।]

यह चित्र कीटाणुओं के वास्तविक स्वरूप

से १५०० गुना अधिक बढ़ाकर दिखलाया गया है। उक्त कीटाणु मन्थरज्वर उत्पन्न करने के मूल कारण हैं।

जब तक यह मनुष्य-शरीर में प्रवेश नहीं करते, तब तक मन्थरज्वर उत्पन्न नहीं होता। शरीर में प्रविष्ट होकर इन कीटाणुओं के बढ़ने व विष उत्पन्न करने से ही मन्थरज्वर-नामक व्याधि का प्रादुर्भाव होता है।

मन्थरज्वर की व्यापकता

मन्थरज्वर अधिक रूक्षता तथा वर्षा की कमी होने से गर्म देशों में विशेषकर होता है। यह व्याधि समुद्रतटस्थ प्रान्तों में प्रायः नहीं देखी जाती। कुछ प्राचीन विचारवालें के मत है कि मन्थरज्वर की उत्पत्ति विशेषतया मरु-भूमि मारवाड़ (राजपूताना) से ही सिद्ध होती है। कुछ समय पहले यह व्याधि अमीरों को ही होती थी; परन्तु वर्तमान समय में उक्त मत अग्राह्य है। आजकल तो यह व्याधि अमीर-ग़रीब सभी को होते देखी जाती है। भारतवर्ष में अन्ध-विश्वासी लोगों के यहाँ जब यह व्याधि होती है, तब मोतीपीर की पूजा करते हैं। कुछ लोग शीतला माता का घटस्थापन कर मन्थरज्वर के दाने दिखते ही उपासना आरम्भ कर देते हैं और अन्य औषधोपचार [illegible] त रखते हैं।

इस प्राचीन परम्परागत अन्ध आराधना के कारण सैकड़ों माताएँ अपने प्यारे पुत्रों को गोद से खोकर अश्रु बहाया करता हैं।

मन्थरज्वर एकदेशीय व्याधि नहीं, किन्तु सर्व-

व्यापक है। कुछ काल से इसका दौरा पंजाब प्रान्त, संयुक्त प्रान्त तथा मध्यप्रदेश और बरार में भी होने लगा है।

वर्तमान समय में इस व्याधि का आक्रमण विशेषरूप से देखने में आता है। मन्थरज्वर पुरुषों एवं स्त्रियों को सभी अवस्थाओं में होता है, किन्तु बालकों को अधिक, तरुणावस्थावालों को कम तथा ४० वर्ष से अधिक आयुवाले पुरुषों को बहुत ही कम होता है।

मन्थरज्वर और अन्य व्याधियाँ

विषमज्वर, श्वसनज्वर, श्लेष्मज्वर इत्यादि में पिडिकाएँ (दाने) उपद्रव-स्वरूप दृष्टिगोचर होती हैं, अतएव इस अवस्था में उत्पन्न हुई स्वेदज पिडिकाओं को देख अनेक वैद्य मन्थरज्वर का अनुमान कर भ्रम में पड़ जाते हैं। आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थ चरक संहिता में उल्लेख है—

"शीतपिडिकाश्च भृशमङ्गेभ्य उत्तिष्ठन्ति"

माधव-निदान की प्रख्यात मधुकोश व्याख्या में भी श्लेष्मज्वर के लक्षणों में श्वेत पिडिकाओं का होना लिखा है। जैसे—

"तथाङ्गे पिडिकाः शीताः प्रसेकश्छर्दितन्द्रिके"

तथा उसी स्थल पर विषमज्वरों के वर्णन में रक्त धातुगतज्वर के लक्षणों में लिखा है—

"प्रलापः पिडिकाः तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम्"

म०म० कविराज श्रीगणनाथसेन सरस्वती सिद्धान्त-निदान में श्वसनज्वर के लक्षणों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—

"श्वेतपिडिकानाञ्च दर्शनम्"

इन प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध होता है कि मन्थर-ज्वर के अतिरिक्त अन्य व्याधियों में भी पिड़िकाओं का प्रादुर्भाव होता है।

श्वसनज्वर (Pneumonia)

नवीन यक्ष्मा किंवा छिन्नान्त्रोदरप्रदाह प्रभृति व्याधियों में इस रोग की तथा इस रोग में उक्त व्याधियों की सामान्यता दृष्टिगोचर होकर कभी-कभी भ्रम हो जाया करता है। मन्थरज्वर तथा संततज्वर में सन्देह हो सकता है, एतदर्थ दोनों के भेदसूचक लक्षण निम्न प्रकार हैं—

मन्थरज्वर और संततज्वर का भेद

मन्थरज्वर (Typhoid Fever)	संततज्वर (Typhus)
१. ज्वर धीमे-धीमे शुरू होता है।	१. ज्वर सहसा चढ़ जाता है।
२. ठंडक शायद ही कभी लगती हो।	२. ठंडक अच्छी तरह लगती है।
३. प्रथम कुछ दिनों तक गर्मी नहीं बढ़ती।	३. आरंभ ही से अधिक गर्मी होती है।
४. प्रायः आरंभ ही से मैले-पीले दस्त होते हैं।	४. प्रायः कोष्ठबद्ध रहता है या पित्तमिश्रित काले दस्त होते हैं।
५. पेट अधिक दुखा करता है कि छुआ नहीं जाता।	५. प्लीहास्थान पर बाईं ओर दुखता है।

६. मोती की भाँति सफ़ेद दाने दिखते हैं।	६. चट्टे अथवा दाने नहीं होते।
७. ज्वर कभी-कभी थोड़ा कम होता है, तथा वह भी प्रातःकाल में कम होता है।	७. ज्वर नित्य कम होता है, प्रातःकाल कम होता है, किन्तु दिन के अन्य समय में भी कम हो जाता है।
८. कामला क्वचित् ही होता है।	८. प्रायः कामला होता है।
९. वमन अथवा हिचकी क्वचित् ही होती हैं।	९. वमन आदि प्रायः होते हैं।

मन्थरज्वर और क्षय में भिन्नता

मन्थरज्वर (Typhoid Fever)	क्षय (Tuberculosis)
१. ज्वर नहीं उतरता	१. इसमें ज्वर उतर भी जाता है।
२. फुफ्फुसों में क्षय के लक्षण नहीं होते।	२. फुफ्फुसों में क्षय के लक्षण होते हैं।
३. कफ में क्षय के कीटाणु नहीं दिखते, किन्तु टाईफाइड बेसीलस इबर्थ के कीटाणु अवश्य दिखते हैं, जो क्षय-कीटाणुओं से सर्वथा भिन्न होते हैं।	३. सूक्ष्मदर्शक यंत्र से क्षय के कीटाणु कफ में स्पष्ट दिखते हैं।

४. स्वेद नहीं निकलता।	४. स्वेद निकलता है।
५. मोती की भाँति सफ़ेद पिडिकाएँ द्वितीय सप्ताह तक उत्पन्न होकर दिखती हैं।	५. पिडिकाएँ नहीं दिखतीं।
६. ज्वर सावधिक होता है।	६. इसमें अवधि नहीं होती।

मन्थरज्वर का कारण

वृताशनात् स्वेदरोधात् मन्थरो जायते नृणाम्।

(योगरत्नाकरः)

घृत या घृत द्वारा निर्मित पदार्थ अथवा अजीर्ण-कारक पदार्थ अधिक सेवन करने से तथा स्वेदावरोध होने से मन्थरज्वर उत्पन्न होता है। दूसरा कारण है—

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः॥

(माधवनिदान)

मिथ्या आहार और मिथ्या विहारकृत कारणों से कुपित हुए दोष आमाशय में प्राप्त हो रस को विकृत कर कोष्ठाग्नि की ऊष्मा को बाहर निकाल ज्वर को उत्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त दूषित जलवायुसेवन से, ऋतुविपर्यय अर्थात् वर्षा ऋतु में पूर्णतया वृष्टि के न होने से अथवा अधिक होने से, अधिक धूप में रहने से, अत्यन्त परिश्रम, अति क्रोध, शोक, चिन्ता

करने से, गरिष्ठ पदार्थ जैसे पूड़ी-परोठे, हलुआ आदि और कफोत्पादक पदार्थ जैसे खीर आदि मिष्ठान्न द्रव्य तथा शराब आदि मादक वस्तुओं के सेवन से उष्ण वस्तु अर्थात् तैल, गुड़, लाल मिर्च, मेथी इत्यादि, गर्म मसालों के किंवा सिरका तथा खटाई के खाने से समय-असमय में न्यूनाधिक भोजन करने से मन्थरज्वर उत्पन्न होता है।

पूर्वरूप

प्रथम कोष्ठबद्धता के साथ अल्प ज्वरांश होता है। मस्तक के अग्रभाग में कुछ पीड़ा, उदरशूल, आध्मान, वमन, तृषा, नेत्रदाह, जृम्भा, अरुचि, हाथ-पैर तथा पीठ में पीडानुभव, विना श्रम किये थकावट, अङ्गों में भारीपन, चित्त में अस्थिरता, अनिद्रा और अस्वस्थता---मन्थरज्वर उत्पन्न होने के पूर्व यही लक्षण प्रकाशित होते हैं, तथापि सर्वप्रथम ऐसे लक्षणों का प्रादुर्भाव नहीं होता, जिससे कि रोगी शय्या पर पड़ने के लिये विवश हो जाय, किन्तु ३-४ दिवस के पश्चात् क्षुधा सर्वथा नष्ट हो जाती है, और कष्टानुभव तथा अल्प ज्वरवेग के साथ-साथ रोगी चलने-फिरने में असमर्थ हो जाता है।

मुख की आभा पाण्डुतापूर्ण, परन्तु कपोलों पर लालिमा होती है। त्वचा कभी शुष्क, कभी स्वेद द्वारा आर्द्र रहती है। जिह्वा मलिन, उसके किनारे तथा अग्रवर्ती भाग रक्तवर्ण और फटा हुआ होता है।

सम्प्राप्ति

पूर्वकथित मिथ्या आहार-विहारजन्य कारणों से अग्निमान्द्य होकर उदर में आम उत्पन्न हो जाता है और यह अपरिपक्व आमरस रक्त में सम्मिलित हो-कर रक्त के साथ नाड़ियों में प्रविष्ट हो उनके मार्ग को रोक देता है, जिससे पाचकाग्नि की गति-विधि विपरीत होकर त्वचा की ओर हो जाता है।

अतएव यकृत् और प्लीहा अपने-अपने कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं। कारण यह कि उनमें रस नहीं पहुँचता। इस अवस्था में प्रकृति शरीर का परिपालन पूर्णतया नहीं कर सकती, तथा इन्द्रियाँ निर्बल होकर अपना-अपना कार्य छोड़ देती हैं।

जिस समय दोष रक्त में सम्मिलित होकर नाड़ियों के मार्ग को रोक देते हैं, उस समय रोमछिद्र रुक जाते हैं। इस दशा में रोमछिद्रों द्वारा वह दोष भी नहीं निकल सकते। इसी कारण स्वेद नहीं निकलता तथा ज्वर चढ़ा रहता है। ज्वर के चढ़े रहने से कंठ, ओठ, जिह्वा, तालु सूखने लगते हैं, तृषा बढ़ जाती है, तंद्रा और अरुचि उत्पन्न होकर निद्रा नाश हो जाती है नाड़ी तथा श्वास की गति तीव्र हो जाती है।

श्वास की वृद्धि हो जाने से दोष ऊपर को पहुँच-कर नीचे को उतरने लगते हैं। इस समय वह बाहर नहीं निकल पाते, कारण कि स्रोतमार्ग आमदोषों द्वारा रुँधे रहते हैं। अतएव दोष न निकलकर दोषों का

वेग त्वचा पर पड़ने से छोटी-छोटी मोती की भाँति सफ़ेद पिडिकाएँ निकल आती हैं।

यह पिडिकाएँ प्रथम कंठ में प्रकाशित होती हैं, पश्चात् क्रमशः नीचे उतरती हुई हृदय से जंघापर्यन्त आती हैं। यदि दोष नीचे को पहुँचकर ऊपर को चढ़ते हैं तो पिडिकाएँ प्रथम उदर में उत्पन्न होकर हृदय एवं कंठपर्यन्त पहुँचती हैं। परन्तु इन विपरीत पिडिकाओं के प्रादुर्भूत होने से अधिक कष्ट होता है। आयुर्वेदीय शास्त्रों में मन्थरज्वर दो प्रकार का माना गया है। मन्थरज्वर किंवा कृष्ण मधुरज्वर।

मन्थरज्वर के लक्षण

ज्वरो दाहो भ्रमो मोहो ह्यतिसारो वमिस्तृषा।
अनिद्रा च मुखं रक्तं तालु जिह्वा च शुष्यति॥
सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा स्फोटाश्च सर्षपोपमाः।
ग्रीवायां परिदृश्यन्ते एकविंशति शाम्यति॥
एभिस्तु लक्षणैर्विद्यान्मन्थराख्यं ज्वरं नृणाम्।

(योगरत्नाकरः)

ज्वर, दाह, भ्रम, मोह, अतिसार, वमन, तृष्णा, निद्रानाश, मुख का रक्तवर्ण होना, तालु तथा जिह्वा की शुष्कता, सात अथवा दस दिवस में सरसों के समान गले में स्फोटों का प्रदर्शन एवं इक्कीसवें दिवस में शान्त हो जाना। उपर्युक्त लक्षण मन्थरज्वर में अवश्य विद्यमान रहते हैं।

कृष्ण मधुरज्वर के लक्षण

ज्वरस्तन्द्रा च स्युर्यस्य दन्तौष्ठेषु च श्यामता ।
घ्राणजिह्वास्यकंठेषु रक्तता चाक्षि कर्बुरम् ॥
मुक्ताहारो गले यस्य सप्ताहाद्धार्यते न चेत् ।
तत्त्रिसप्तदिनादर्वाक् स्फोटाः स्युः सर्षपोपमाः ॥
एतच्चिह्नं भवेद्यस्य समधूरक उच्यते ।

(आयुर्वेदसंग्रह)

ज्वर, तन्द्रा, दन्त और ओष्ठ में श्यामता, नासिका, जिह्वा, मुख एवं कंठ इन प्रत्यङ्गों की रक्तवर्णता, नेत्र फटे से होवें, और यदि उपर्युक्त लक्षणवाले रोगी के लिए सात दिवस में गले में मोतियों की माला न पहनाई जाय तो इक्कीस दिवस के भीतर ही सरसों के समान स्फोट (पिडिका) उत्पन्न हो जाते हैं। जिस रोगी की यह दशा हो, उसको कष्टसाध्य कृष्ण मधुरज्वर कहते हैं।

उक्त रोगी की चिकित्सा चतुर चिकित्सक द्वारा शीघ्र ही आरम्भ होना चाहिए, अन्यथा दोष दूषित होकर रोगी को संशोषी सन्निपात के स्वरूप में परिणत कर देते हैं।

संशोषी सन्निपात के लक्षण

मेचकवपुरतिमेचकलोचनयुगलोऽचलो मलोत्सर्गी ।
संशोषिणीसितपिडिकामंडलयुक्तो ज्वरो भवति ॥

(आयुर्वेदसंग्रह)

जिसका शरीर श्यामवर्ण हो, दोनों नेत्र अत्यधिक श्याम हों, रोगी शक्तिहीन हो गया हो, अतिसार हो, शरीर में श्वेत पिडिकाएँ तथा मंडल पड़ जायँ, इन लक्षणों से युक्त रोगी के लिए संशोषी कहते हैं। यह सशोषी-सन्निपात मधुरज्वर का भेद है। उपर्युक्त लक्षणवाला रोगी मधुरज्वर की असाध्य अवस्था का परिचायक है।

यद्यपि ज्वर, दाह, भ्रम, मोह, अतिसार, तृषा तथा पिडिकाओं का प्रादुर्भाव इत्यादि समस्त लक्षण इस समय के मन्थरज्वर में भी दृष्टिगोचर होते हैं, तथापि वर्तमान मन्थरज्वर में एवं पाश्चात्य एलोपैथिक लक्षणों में कुछ भेद अवश्य रह जाता है। इस प्रकार के भेद देश-काल आदि की भिन्नता के कारण भी हो सकते हैं।

मन्थरज्वर के उपद्रव

रोगी के आहार-विहार में अनियमितता होने के कारण द्वितीय अथवा तृतीय सप्ताह में निम्न उपद्रव उत्पन्न होते हैं—गुदा-मार्ग द्वारा रक्तस्राव, अतिसार की अधिकता, ज्वर वेग का सहसा ह्रास, शीताङ्ग, छिन्नान्त्रोदर, अनिद्रा, कास, श्वास, वमन, तृष्णा, मूर्च्छा, नाड़ी तीव्र, जिह्वा कण्टकावृत, अधिक कृशता, अकस्मात् शीताङ्ग होना, कभी-कभी तीव्रज्वर, ज्वराधिक्य में हृदय-गति बढ़ जाती है, अतएव धमनियाँ फैल जाती हैं तथा उनमें रक्त अधिक वेग के साथ प्रवाहित होने लगता है। छोटी-छोटी केशिकाएँ

उत्तप्त रक्त द्वारा पूरित होकर फैल जाती हैं, यहाँ तक कि उनमें रक्तज शोथ की अवस्था आ जाती है।

इस अवस्था में रक्ताभिवृद्धि का मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है, फलस्वरूप मूर्च्छा उत्पन्न हो जाती है। मूर्च्छावस्था का प्रादुर्भाव होते ही मानसिक शक्तियों का कार्य अव्यवस्थित हो जाता है।

मस्तिष्क के पृथक्-पृथक् क्रियाशील अवयवों के जिस-जिस विभाग पर इसका प्रभाव पड़ता है, तज्जन्य अवस्थाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिससे अनेक रोगी प्रलाप करने लगते हैं, अनेक प्रलापरहित शान्त संज्ञा-शून्य पड़े रहते हैं। अनेक प्रलाप के साथ ही साथ उठ-उठकर मारने, काटने, भागने आदि का प्रयत्न करते हैं। अनेकों के लिए साधारण स्मृति रहती है। अनेक शान्त तन्द्रावस्था में पड़े रहते हैं।

इसके अतिरिक्त यदि आन्त्रिक विकार बढ़कर ज्वर तीव्र हो जाय, जिसका टेम्प्रेचर १०३ से १०५ डिगरी तक पहुँच जाय तो इसका प्रभाव अनिष्टकारी होता है। ज्वर के तीव्र होने पर केवल मस्तिष्क, हृदय, फुफ्फुस ही प्रभावित नहीं होते, अपितु यकृत्, प्लीहा, आदि आन्तरिक अङ्गों पर भी अधिक दुष्प्रभाव होता है। अनेक रोगियों का यकृत् बढ़ जाता है, अनेकों को फुफ्फुसप्रदाह उत्पन्न हो जाता है, अनेकों के प्लीहा और अन्त्र आदि अन्य अङ्ग भी विकृत हो जाते हैं।

उक्त अवस्था में जो-जो उपद्रव उत्पन्न होते हैं,

यदि वह विद्यमान रहें तो स्वतन्त्र व्याधि का स्वरूप धारणकर कठिन व्यथा पहुँचाते हुए रोगी को मृत्यु-मुख में ढकेल देते हैं। अनेक रोगी फुफ्फुस-प्रदाह से और अनेक यकृत् प्लीहा-उदर की अभिवृद्धि से, तथा अनेकों रोगी बढ़ी हुई हृदय-गति के अकस्मात् रुक जाने से यम के अतिथि बन जाते हैं। उक्त उपद्रव अथवा दुरवस्थाएँ प्रायः ज्वराधिक्य के कारण ही उत्पन्न होती हैं। उपर्युक्त उपद्रवयुक्त रोगी की दशा को ही मन्थरज्वर की असाध्य अवस्था समझनी चाहिए। यदि ज्वर १०४ से अधिक न हो तो प्रायः असाध्यावस्था अथवा कोई मारक उपद्रव उत्पन्न नहीं होते, तथा रोगी शनैः शनैः तृतीय सप्ताह पर्यन्त रोग-मुक्त हो जाता है।

मन्थरज्वर के अरिष्ट लक्षण

१—व्याधि उत्पन्न होते ही दोषाधिक्य के कारण यदि उपद्रवों की वृद्धि हो जाय तो रोगी का आरोग्य होना कठिन है।

२—रोगी में मन्थरज्वर के सम्पूर्ण लक्षण उपद्रव-युक्त उपस्थित हों, तथा यह व्याधि दुर्बल, वृद्ध, गर्भ-वती स्त्री को उत्पन्न हो तो उसकी जीवन-यात्रा पूर्ण होनी कठिन है।

३—जिस रोगी के नेत्र रक्तवर्ण हों, विकलता अधिक हो, प्रलाप करता हो, अपनी बात कहे किन्तु दूसरे की बात न सुने, ऐसे रोगी का आरोग्य होना दुस्साध्य है।

४—कासो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिस्तृष्णातीसारविड्ग्रहाः ।
हिक्काश्वासाङ्गभेदाश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥
(चरकसंहिता)

१ कास, २ मूर्च्छा, ३ अरुचि, ४ वमन, ५ तृषा, ६ अतिसार, ७ मलबद्धता, ८ हिक्का, ९ श्वास, १० अङ्गपीड़ा यह दस उपद्रव प्रत्येक ज्वरों में उत्पन्न हो सकते हैं और अन्त में रोगी को भयङ्कर अवस्था में परिणत कर देते हैं। यदि यही दस उपद्रव मन्थरज्वर-रोगी को उद्भूत हों तो उसका जीवन अत्यल्प समझना चाहिए।

५—अथवा जिस रोगी को हिक्का, श्वास-वेगाधिक्य, मूर्च्छा, आध्मानयुक्त अतिसार और संज्ञा शून्यता हो उसे अवश्य मृत्युमुख का ग्रास समझना चाहिये।

६—जो रोगी अकस्मात् असंबद्ध प्रलाप करता हो, मूर्च्छित हो तथा मल मूत्र होने का ज्ञान न रखता हो ऐसा रोगी आरोग्य नहीं होता।

७—जिसका शरीर शीतल हो किन्तु अभ्यन्तर में दाह हो, ऊर्ध्वश्वास हो, ललाट स्थान अथवा शिर में स्वेदाधिक्य हो, वह जीवित नहीं रह सकता।

८—जो रोगी नेत्रों से देख न सके, कानों से सुन न सके, जिह्वा से स्वादशून्य हो, त्वचा का स्पर्शज्ञान नष्ट हो जाय और अन्य इन्द्रियाँ भी कार्य

करने में असमर्थ हो, उसको यमलोक का यात्री समझना चाहिये।

६—जो रोगी दाँतों से अपने नखों को काटता रहे, अथवा अंगुली आदि अपने अङ्गों को ही काटने दौड़े और अपने सिर के बालों को नोचे, काष्ठ से पृथ्वी को खरोंचे, उसका बचना असंभव है।

१०—जो रोगी कभी कुछ, कभी कुछ विकृत स्वर से बकता रहे और 'मैं अवश्य मरूँगा' ऐसे अशुभ वाक्य कानों से सुने अथवा स्वयं कहता हो, उसकी मृत्यु हो जाती है।

११—जिसके सम्पूर्ण शरीर में लाल-लाल रंग की मूँगे के समान अथवा मसूर के रंग की भाँति पिडिकाएँ यकायक पैदा होकर शीघ्र ही नष्ट हो जायँ तो वह मन्थरज्वर का रोगी शीघ्र मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

मन्थरज्वर के साप्ताहिक लक्षण

यह मन्थर गति से क्रमानुसार आरोग्य होनेवाला सावधिक ज्वर है, तभी इसे संस्कृतज्ञों ने मन्थरज्वर तथा हिन्दी-भाषियों ने मियादी बुखार नाम दे रखा है।

यह ज्वर बहुधा तृतीय सप्ताह अर्थात् २१ दिन में अथवा २८ दिन में अवश्य शान्त हो जाता है, किन्तु कभी-कभी दोषबाहुल्य के कारण व्याधि बलवान्

होकर ४२ दिन तथा ६० दिन तक की अवधि पूर्ण कर आरोग्य होते देखी गई है।

प्रथम सप्ताह—ज्वर-संताप १०२ से १०४ तथा किसी किसी को १०५ डिग्री तक पहुँच जाता है, परन्तु-ज्वर-वेग बढ़ने के अनुसार नाड़ी की गति उतनी तीव्रतम नहीं होती। इस सप्ताह में प्रायः कोष्ठबद्धता रहता है और इसी के अन्त में किसी किसी रोगी को अतिसार आरम्भ हो जाता है। कोष्ठबद्धता की अपेक्षा अतिसार अधिक चिन्ताजनक है।

इसी सप्ताह के अन्तर्गत कण्ठ में मोती की भाँति श्वेत वर्ण की पिडिकाएँ अवश्य प्रकाशित होने लगती हैं, जो क्रमशः नीचे की ओर निकलती हुई रान तक पहुँचती हैं। पिडिकाओं (दानों) का प्रादुर्भाव विलम्ब से भी होता है। इन पिडिकाओं का प्रकाशित होना ही मन्थरज्वर की परीक्षा या परिचय का प्रधान साधन है तथा यही विशेष लक्षण है।

द्वितीय सप्ताह—ज्वर-संताप बढ़कर १०३ अथवा १०४ डिग्री तक पहुँचकर प्रायः स्थिर-सा हो जाता है। प्रलाप, कास, वमन, तन्द्रा, मूर्च्छा और उदराध्मान, ये उपद्रव अधिकतया प्रतीत होते देखे गये हैं। अन्त्रों में शोथ और व्रण उत्पन्न हो जाते हैं, यदि यही आन्त्रिक व्रण फूट जायँ तो इस स्थिति में रक्तातीसार आरम्भ हो जाता है। पिडिकाएँ छाती तथा पार्श्व द्वय एवं उदर पर उतर आती हैं।

जिस क्रमपूर्वक पिडिकाएँ नीचे की ओर उतरती

जाता है, ठीक उसी क्रमानुकूल ज्वर-संताप शनैः-शनैः न्यून होता जाता है। साथ ही अन्य उपद्रव भी न्यून हो जाते हैं। यदि पिडिकाओं का छाती के ऊपर निकालना बन्द हो जाय तो इसमें अन्य अनिष्टदर्शन की सम्भावना रहती है, इसलिए चिकित्सक को चाहिए कि पिडिकाएँ उचित रूप में उत्पन्न हों ऐसी चिकित्सा शीघ्र प्रारम्भ कर दे ताकि अन्य उपसर्ग उपस्थित न हो सकें। किसी-किसी रोगी की पिडिकाएँ मिलकर अथवा मोटे वस्त्रों के पहिनने ओढ़ने से रगड़ लगने के कारण मिलकर फूट जाती हैं, फलतः वे चकत्ते छालों के रूप में परिणत हो जाते हैं। नाड़ी की गति-विधि प्रथम सप्ताह की अपेक्षा तीव्र हो जाती है, तथापि अपेक्षाकृत ज्वर के न्यून रहती है। अर्थात् ज्वर-संताप यदि १०४ डिग्री हो तो नाड़ी की गति प्रति मिनट १२० बार तक की होगी

तृतीय सप्ताह—अनुभवी चिकित्सक की चिकित्सा प्रारम्भ होने से अथवा रोगी की पूर्ण परिचर्यापालन करते रहने से अधिक उपद्रव न बढ़कर प्रथम सप्ताह में ज्वर-संताप जिस क्रमानुसार बढ़ा था तदनुसार न्यून होने लगता है। इस सप्ताह में किसी-किसी रोगी को मन्द-मन्द ज्वर सायंकाल में घंटे दो घंटे के लिए हो जाया करता है। उक्त क्रम किसी-किसी रोगी को चतुर्थ किंवा पंचम-सप्ताह पर्यन्त दृष्टिगोचर हुआ है।

उपशयावस्था अथवा चतुर्थ सप्ताह—यह मन्थर-ज्वर की उस अवस्था का नाम है, जिस समय मन्थरी

विषदोष के विपरीत प्रकृति प्रतिविष निर्माण कर व्याधिमूल को विनाश करने की क्रिया में लग जाती है। अतएव इस सप्ताह के प्रारम्भ-पर्यन्त ज्वर प्रायः शान्त हो जाता है, एवं सम्पूर्ण उपद्रव शमन होकर शरीर में शनैः-शनैः शक्ति का संचय होने लग जाता है। इस उपशयावस्था में आकर यदि अपथ्य न हुआ हो तो व्याधि अपनी अवधि पर आकर अवश्य शान्त हो जाती है। यदि इसी अवस्था में रोगी ने कुछ कुपथ्य कर लिया तो व्याधि के प्रतिकूल-परिचर्या होने के कारण ज्वर उक्त क्रमानुसार फिर बढ़ने लगता है और अतिसारादि उपसर्ग उत्पन्न हो जाते हैं तथा इसकी अवधि भी बढ़ जाती है। इस प्रकार प्रबल (बढ़ा) हुआ ज्वर फिर षष्ठ सप्ताह (४२ दिन) के उपरान्त उतरता है।

कुपथ्य के कारण मलज विकारों की वृद्धि हो जाती है, अतः अपथ्य द्वारा अधिक बढ़ा हुआ आमाशयस्थ दोष सामान्यरूपेण पुनः उसको स्थिर रखने में सहयोगी हो जाता है, एतदर्थ अवधि बढ़ जाती है।

इस स्थिति में रोगी अधिक दुर्बल हो जाता है, अतएव उसके आरोग्य होने की आशा निराशा में परिणत हो जाती है। इसलिए—

भिषग् द्रव्यमुपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्।
यावत् कारणं ज्ञेयं विकारस्योपशान्तये॥

(भैषज्यरत्नावली)

चिकित्सक, औषधि, परिचारक तथा रोगी ये चारों शास्त्रानुकूल गुणसम्पन्न ही रोगशान्ति के कारण होते हैं। आयुर्वेद-शास्त्र में यही चिकित्सा के चार पाद अथवा चार आधारभूत साधन हैं। पादचतुष्टय पूर्ण सहायक हों, ज्वर भी अधिक न हो, रोग उपद्रव-रहित हो तथा वृथा लंघनादि द्वारा शक्ति क्षीण न हुई हो तो कदाचित् रोगी का आरोग्य होना सम्भव है।

विशेष परीक्षा

नाड़ी परीक्षा

प्रथम सप्ताह में—नाड़ी उष्ण वेगवती भयङ्कर गति से चलती है। कभी टेढ़ी, सीधी और लंबी दौड़ती हुई चलती है।

द्वितीय सप्ताह—नाड़ी उष्ण, सूत के समान तथा चंचल चलती है। यदि इस सप्ताह में आन्त्रिक व्रणों के फूटने से उत्पन्न हुआ अतिसार आरम्भ हो तो नाड़ी की गति मन्द रहती है।

तृतीय सप्ताह—नाड़ी की गति तीव्र तथा दुर्बल हो जाती है।

चतुर्थ सप्ताह—नाड़ी स्थूलतायुक्त, कठिन एवं शीघ्र तथा अधिक स्फुरण करती हुई चलती है यदि मिथ्या आहार-विहार द्वारा व्याधि का पुनर्वार प्रादुर्भाव हुआ तो संशोषी सन्निपात हो जाता है। इस दशा में नाड़ी की गति तन्तुवत् (तार-जैसी) मन्द और

शीतल रहती है। यदि बहुत वेगवान् नाड़ी चलती हो, तो रोगी का सन्निपात शान्त हो जायगा और यदि शीतल, स्निग्ध, कोमल, मन्द-मन्द, कुटिल, अस्थिर, काँपती हुई, रुक-रुककर चले, कभी स्फुरण न मालूम पड़े (नाड़ी नष्ट हो जाय) जो नाड़ी का नित्य स्थान है उस स्थान से भ्रष्ट हो जाय, परीक्षक की अँगुलियों में मालूम न पड़े अर्थात् मणिबन्ध से कुहनी की ओर खिसक आवे, पश्चात् थोड़ी देर में मालूम होने लगे, इस प्रकार के अनेक भाव प्रदर्शित करनेवाली नाड़ी की गति हो तो उसे असाध्य समझना चाहिए। अथवा अति तीक्ष्ण अति शीत होवे तो निःसन्देह जीवन का अंत करनेवाली नाड़ी जाननी चाहिए।

थर्मामीटर द्वारा परीक्षा

मन्थरज्वर में तापमापक यंत्र (Thermometer) द्वारा ज्वर के न्यूनाधिक्य का परिज्ञान सरलता से प्राप्त हो जाता है, जिसका उपयोग करना नितान्त आवश्यक है। यह चिकित्सक तथा परिचारक को चिकित्सा-फल प्रकट करने में सहायक होता है। अतएव तापमापक यंत्र द्वारा, प्रति सप्ताह के ज्वर-वृद्धिक्रम, जो मेरे सदा अनुभव में आया है, का उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है।

प्रथम सप्ताह—ज्वर-संताप प्रातःकाल १०० अथवा १०१ डिग्री और सायंकाल १०२ अथवा १०४ डिग्री

तक रहता है। उक्त क्रमानुसार ज्वर-संताप प्रथम सप्ताह में शनैःशनै बढ़ता है।

द्वितीय सप्ताह—ज्वर-संताप बढ़कर १०३ अथवा १०४ डिग्री तक पहुँचकर स्थिर-सा हो जाता है। किसी किसी को १०२ से १०५ डिग्री तक होकर गंभीर गति से प्रारम्भ रहता है, केवल प्रातःकाल १०३ हो जाता है।

तृतीय सप्ताह—ज्वर-संताप प्रातःकाल ९९॥ से १०० और सायंकाल १०१ तथा १०२ डिग्री तक पहुँचता है। तृतीय सप्ताह एवं चतुर्थ सप्ताह में ज्वर-संताप जिस प्रकार बढ़ा था, तदनुसार क्रमशः कम होने लग जाता है।

चतुर्थ सप्ताह—इस सप्ताह के आरम्भ में ज्वर-संताप प्रायः शान्त हो जाता है। यदि मिथ्या आहार-विहार द्वारा प्रकुपित दोष बलवान् हो गये तो व्याधि का पुनर्वार आक्रमण होकर ज्वर-संताप प्रथम सप्ताह के समान क्रमानुकूल पुनः बढ़ने लगता है। तथा इस प्रकार बढ़ा हुआ ज्वर-संताप षष्ठ सप्ताह के उपरान्त न्यून हो जाना है। किसी-किसी रोगी का ज्वर न्यूनाधिक्य न होकर अनियमित रूप में एक समान आरम्भ रहता है, जो कि २ या ३ मास में प्रयत्नपूर्वक चिकित्सा करते रहने पर शान्त होता है।

अरिष्टसूचक चिह्न

ज्वर-संताप की वृद्धि १०५ से १०६ या १०७

डिग्री होना अथवा अकस्मात् न्यून होकर अर्थात् स्वाभाविक संताप ९८ डिग्री दशमलव ४ फ़ारनहीट से ९५ डिग्री तक उतरकर हिमाङ्गावस्था का होना अत्यन्त भयानक है। सामान्य ज्वर में शारीरिक संताप १०१॥ डिग्री फ़ारनहीट से अधिक नहीं होता। प्रबल ज्वर में १०४ डिग्री से अधिक संताप नहीं पाया जाता। सांघातिक ज्वर में १०६॥ और १०८॥ डिग्री तक संताप होने से रोगी की मृत्यु हो जाती है।

मन्थरज्वर में १०४ अथवा १०१ डिग्री ज्वर संताप हो तो सामान्य, किन्तु यदि १०५ अथवा १०२ डिग्री संताप हो और यह संताप सर्वदा रहे तो इस दशा में रोग कष्टसाध्य समझना। १०६ अथवा १०७ डिग्री तक संताप भयजनक तथा १०९ अथवा ११० डिग्री संताप हो जाने से रोगी की मृत्यु निश्चय होगी ऐसा समझना चाहिए।

जिह्वापरीक्षा

प्रथम सप्ताह—जिह्वा पर मोटा पर्त सफ़ेद तह-सा लिपटा रहता एवं जिह्वा के किनारे तथा अग्रवर्ती भाग अरुण वर्ण रहते अथवा मध्य में रक्त-रेखा प्रदर्शित होती है।

द्वितीय सप्ताह—जिह्वा शुष्क, श्यामवर्ण, मलिन एवं काँपती-सी होती है। कुछेक दानेदार भी रहती है।

तृतीय सप्ताह—किंचित् लालिमा लिए हुए धूम्र वर्ण की जिह्वा दिखलाई देती है।

आरोग्य अवस्था—जिह्वा सर्वदा आर्द्र और स्वच्छ, विकाररहित हो जाती है, तथा उससे प्रत्येक पदार्थों के स्वाद यथोचित प्रकार से प्राप्त होते हैं। साथ ही अन्न पर अभिलाषा उत्पन्न होने लगती है।

असाध्य अवस्था—जिह्वा खरखरी (गोजिह्वा के समान) भीतर को खिंची हुई, फेनयुक्त, कठिन किंवा चलनशक्तिरहित रहती है। अथवा जिह्वा जकड़ी हुई, कण्टकावृत, कालिमा लिये हुए, शुष्क तथा सशोथ दृष्टिगत हो तो वह मन्थरज्वरग्रस्त मनुष्य अवश्य मृत्यु-मुख का ग्रास होता है। अथवा सीसे के समान श्याम-वर्णवाली जिह्वा पर यदि छाले उत्पन्न हो जायँ तो निस्सन्देह मृत्यु-समय समीप समझिए।

नेत्रपरीक्षा

मन्थरज्वर के आरम्भ में नेत्र निस्तेज, धूम्रवर्ण, दाहयुक्त, पीत और अश्रुपूर्ण प्रदर्शित होते हैं।

विकास अवस्था—नेत्र तीव्र, रूक्ष मध्यभाग पीत अथवा अरुणवर्ण और पुतली चंचल होती है। इस दशा में रोगी दीपक की रोशनी नहीं सह सकता।

असाध्य अवस्था—नेत्र श्यामवर्ण अथवा रक्तवर्ण, तिरछी दृष्टि, भीतर को धँसे हुए (बैठे हुए), विकृत तथा तीव्र पुतली कभी स्तब्ध, स्थिर, तन्द्राच्छन्न तथा थोड़ी-थोड़ी देर में नेत्र बन्द होकर बारम्बार खुलते रहें। अथवा अश्रुप्रवाह होता रहे, ज्योतिहीनता, किसी को

देखकर पहिचान न पाये, प्रायः उक्त लक्षण रोगी का अत्यल्प आयु के सूचक होते हैं।

आरोग्यअवस्था--व्याधि के आरोग्य होने पर नेत्रों में क्रमशः स्वाभाविक सौन्दर्यपूर्ण प्रसन्नता, शुभ्र-वर्ण एवं शान्त दृष्टि प्रभृति आरोग्यता परिचायक लक्षण दिखने लगते हैं।

मूत्रपरीक्षा

प्रथम सप्ताह—मूत्र का रंग रक्त, पीत तथा कभी स्वच्छ होता है और वह उष्ण भी रहता है।

द्वितीय सप्ताह—मूत्र ऊपर से पीलाहट लिये हुए और नीचे रक्तवर्ण का दिखता है।

तृतीय सप्ताह—मूत्र सरसों के तेल के समान होता है।

चतुर्थ सप्ताह--मूत्र का रंग प्रायः सूखी घास के समान रहता है, परन्तु प्रातःकाल श्वेत तथा स्वच्छ और सायंकाल किंचित् पीलापन लिए हुए होता है।

असाध्य अवस्था—मूत्र का रंग कालिमापूर्ण और बुद्बुद् के समान होता है।

विशेष ज्ञातव्य--मन्थरज्वर में मूत्र प्रायः अल्प मात्रा में उतरता है। मूत्र में क्षार (Acid) की वृद्धि किंवा कच्चित् रक्तमूत्रता अथवा अरुणिमा और स्निग्धता अर्थात् तलछट का आना अवश्य पाया जाता है।

मलपरीक्षा

प्रथम सप्ताह--आरम्भिक अवस्था में रोगी को कोष्ठबद्धता रहती है अथवा अतिसार आरम्भ रहता है, जिसमें मल पतला, पीतवर्ण, दुर्गन्धयुक्त, मटर की दाल के धोवन सदृश होता है और कोष्ठबद्धता के कारण चतुर्थ अथवा पंचम दिवस में मल ग्रन्थियुक्त, धूम्र-वर्ण, अत्यन्त कड़ा होता है।

द्वितीय सप्ताह--मल उष्ण पीतवर्ण तथा हरापन लिये ढीला होता है। अथवा आन्त्रिक व्रणों के फूटने से मल के साथ रक्त निस्सरण होने लगता है, किंवा मल स्निग्ध पूययुक्त दुर्गन्धित होता है। दस्तों की संख्या अधिक होकर उदर में शूल होने लगता है।

तृतीय सप्ताह--शौच शुद्ध होकर अपानवायु खुलती है। अतएव कोष्ठ में हलकापन रहता है, तथापि सम्यक् प्रकारेण अग्नि प्रदीप्त न होने के कारण कभी मल बँधा हुआ रूक्ष होता है तो कभी पतला पिच्छल होता है।

असाध्य अवस्था--मल अति शुभ्र, अति श्याम, अति पीत और अति अरुणवर्णवाला होता है, तथा भृशोष्ण, मयूरपुच्छ की चन्द्रिका के समान रंग रहना, मुर्दा के समान दुर्गन्धित अथवा मछलियों के जैसा (मछरियाँधवाला) गन्धयुक्त तथा मांसजल के तुल्य चित्र-विचित्र वर्णवाला, अत्यन्त पतला और भारी मल मारक होता है। अथवा जिस रोगी का मल जल में डालने से नीचे बैठ जाय उसकी मृत्युसूचक असाध्य अवस्था समझनी चाहिए।

चिकित्साक्रम

मन्थरज्वर के आरम्भ में कोई औषधि विशेषरूप से ज्वर को उतारने अथवा रोकनेवाली न दे; परन्तु उत्पन्न हुए उपद्रवों से रोगी की सर्वथा रक्षा करे। चिकित्सक को अवस्थानुकूल ऋतु, बल, काल का पूर्ण-रूपेण विचार कर लेना परमावश्यक है, कारण कि मन्थरज्वर त्रिदोषज व्याधि है।

यद्यपि अनेक वैद्य पित्तोल्वण सन्निपात मानते हैं और अनेक रुग्दाह में इसकी गणना करते हैं, किन्तु मेरा मत तो वृद्धपित्त-मध्यवात-हीन कफात्मक सन्निपात मान लेने का है। जिसके सम्बन्ध में चरकाचार्य का, सान्निपातिक उल्वणादि भेदों में, निम्न मत मान्य है—

पर्वभेदोऽग्निमान्द्यं च तृष्णा दाहोऽरुचिर्भ्रमः।
कफहीने वातमध्ये लिङ्गं पित्ताधिके विदुः॥

(चरकसंहिता)

पोरुओं में फूटन की-सी पीड़ा, मन्दाग्नि, तृषा, दाह, अरुचि और चक्कर आता है। इसलिए २–४ दिवस पूर्व से ही कोई औषध न देकर रोगी को केवल लंघन कराना रोग-मुक्ति का श्रेष्ठतम साधन है। पूर्वाचार्यों का कथन भी है--

'ज्वरादौ लंघनं कुर्यात्'

किन्तु यदि बालक हो तो क्षीरपाक किया हुआ अथवा चूने के पानी से फाड़ा हुआ गोदुग्ध देने में हानि नहीं होती।

साप्ताहिक चिकित्सा

प्रथम सप्ताह--संजीवनीवटी १, मंथरज्वरारिवटी १, अमृतासत्व ४ रत्ती, मुक्तापिष्टी * १ रत्ती।

सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार करे। अनुपान--तुलसीपत्र रस १॥ माशा तथा मधु १॥ माशा के साथ।

समय--दिन में ३ अथवा ४ बार आवश्यकतानुसार।

गुण--ज्वरवेग शामक और उपद्रवनाशक है।

अथवा केवल संजीवनीवटी १, मन्थरज्वरारिवटी १, दोनों को निम्नोक्त क्वाथ के साथ सेवन कराना चाहिए।

मन्थरज्वरहर क्वाथ

गुर्च, चिरायता, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, कटाई की जड़, कुटकी, अमिलतास का गूदा, अतीस, इन्द्र जौ।

विशेष—यदि अतिसार हो तो अतीस और इन्द्र जौ मिलाकर देना। तथा कोष्ठबद्ध हो तो कुटकी और अमिलतास का गूदा मिलाना चाहिए। यदि कफ शुष्क हो तो इस दशा में मुनक्का एवं मुलहठी मिलाकर देना।

विधि--प्रत्येक क्वाथ का द्रव्य समान भाग लेना,

---

* मुक्तापिष्टी मूल्यवान् ओषधि होने से साधारण श्रेणी के पुरुषों को सर्वसुलभ नहीं, अतः प्रतिनिधिस्वरूप शुक्तिभस्म का प्रयोग करना चाहिए। निघंटुकार का मत है, 'मुक्ता यदि न लभ्येत तत्र शुक्तिं प्रयोजयेत्।'

(हारीतक्यादि निघंटु)

यह सम्पूर्ण मिलाकर दो तोला से न्यून न होना चाहिए तथा क्वाथ अष्टमांश तैयार कर सेवन करना चाहिए।

द्वितीय सप्ताह—संजीवनीवटी १ कल्पतरुरस २ रत्ती, मुक्तापिष्टी १ रत्ती, प्रवालपिष्टी २ रत्ती, अमृता सत्व ४ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण ४ रत्ती, सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर लेना चाहिए।

अनुपान—तुलसीपत्ररस एवं मधु।
समय—दिन में ५ बार तक।

अथवा—संजीवनीवटी २ शुक्ति भस्म २ रत्ती, शृंगभस्म १ रत्ती, प्रवालपिष्टी २ रत्ती, अमृतासत्व ४ रत्ती। सबका मिश्रण कर एक मात्रा बना लेवे।

अनुपान—मधु ३ माशा, तुलसीपत्र रस १॥ माशा।
समय—प्रातः, मध्याह्न, सायं, एवं रात्रि में।

अथवा—केवल त्रिभुवन कीर्तिरस २ रत्ती मधु द्वारा आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिए।

तृतीय सप्ताह—जिस चिकित्सापद्धति द्वारा रोगी को द्वितीय सप्ताह के अन्त पर्यन्त लाभ पहुँचा है, उसी क्रमानुकूल चिकित्सा तृतीयसप्ताह में भी प्रारम्भ रखनी चाहिए।

अथवा—संजीवनीवटी १, मुक्तापिष्टी १, रत्ती, अमृता-सत्व ६ रत्ती, सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर लेना।

अनुपान—३ माशे मधु।
समय—प्रातः, मध्याह्न और सायं ३ बार।

चतुर्थ सप्ताह—स्वर्णबसंतमालिनी २ रत्ती, प्रवाल-पिष्ठी २ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण १ माशा, सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर लेनी चाहिए।

अनुपान—३ माशे मधु अथवा च्यवनप्राश अवलेह ६ माशा या १ तोले के साथ। समय—प्रातः और सायंकाल।

उपद्रवों का उपचार

उपशयावस्था अथवा चतुर्थ सप्ताह में रोगी को सामान्यतया क्षुधा उत्पन्न होती है, साथ ही अधिक दौर्बल्य रहता है। यदि इस दशा में मिथ्या आहार-विहार अथवा प्रतिकूल परिचर्य्या हो तो ज्वर का पुनराक्रमण हो जाया करता है।

ज्वर का पुनः आक्रमण होना भयानक अवस्था का सूचक है। इसलिए सर्व रोगों में प्रधान रोग ज्वर की चिकित्सा और उपचार सर्वप्रथम प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। आचार्य चरकजी को यही अभिमत है, जैसे—

देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली।
ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा॥

ज्वराधिक्य

अमृतासत्व १ माशा, शुक्तिभस्म २ रत्ती, प्रवाल-पिष्ठी २ रत्ती, सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर लेनी चाहिए।

अनुपान—३ माशे मधु अथवा मिश्री की चाशनी द्वारा। समय—आवश्यकतानुसार प्रयोग करना।

अथवा—ज्वरेन्द्रवज्र रस २ रत्ती। अनुपान—तुलसीपत्र ५ नग, मधु ३ माशा। समय—इसका उपयोग जिस समय ज्वर न चढ़ा हो उस समय करना चाहिये। यह अधिक लाभ-प्रद सिद्ध हुआ है।

यदि हाई टेम्प्रेचर (High temperature) अर्थात् जिस समय ज्वर-संताप १०५° १०६° १०७ डिग्री तक हो जावे उस समय यू डी-कोलन (Eau-de-Cologne) २५ बूँद, जल ५ तोले, बर्फ़ २॥ तोले, तीनों को मिलाकर मिट्टी के सकोरे में भर कर रख लें। इसी जल में २ अंगुल चौड़ा साफ़ कपड़ा चार तह किया हुआ भिगोकर ललाटस्थान (मस्तक) पर बदल-बदल कर बराबर रखते रहना चाहिये। अथवा—सिरका २॥ तोले, बर्फ़ २॥ तोले, जल ५ तोले, तीनों को मिलाकर ऊपर कहे अनुसार उपयोग में लाना चाहिये। अथवा—एकमात्र बकरी के औटाए हुए दूध में कपास के फाहों को तर कर मस्तक और गुलगुलों पर रखने से ज्वर-संताप क्रमपूर्वक कम होने लगता है।

इस क्रिया के करने पर भी यदि १०६ डिग्री से ज्वर-संताप कम न होकर अधिक होता जाय अथवा स्थिर ही रहे, तो इस दशा में आइस बेग (Ice bag) रबर की थैली में बर्फ़ भरकर शिर के केश कटाकर बराबर शिर पर रखे रहना चाहिये। जिस समय कि ज्वर-संताप कम होकर १०३ रह

जाय तब बर्फ़ की थैली हटा दी जाय, और केवल यू डी-कोलन (Eau-de-Cologne) तथा जल की पट्टी को ही मस्तक पर रखना चाहिये, जब ज्वर-संताप १००° डिग्री तक रह जावे तब इस यू-डी-कोलन की पट्टी का प्रयोग भी बन्द कर देना चाहिये।

अतिसार और रक्तातिसार

कर्पूरादि वटी १, गंगाधर रस ४ रत्ती; इन दोनों का मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर लेनी चाहिये। अनुपान—३ माशे मधु अथवा तन्दुलोदक। समय—दिन में तीन बार अथवा आवश्यकतानुसार। अथवा—कनकसुन्दर रस २ रत्ती। अनुपान—६ माशे बेल के मुरब्बे के साथ। समय—आवश्यकता पर दिन में दो बार तथा भोजनोपरान्त अथवा मध्याह्न एवं रात्रि समय में ६ माशे से १ तोले तक कुटजारिष्ट १ तोला जल के साथ सेवन कराना चाहिए।

छिन्नान्त्रोदर

लवङ्गादि चूर्ण १ माशा, मुक्तापिष्टी १ रत्ती, दोनों का मिश्रण कर एक मात्रा बना लेनी। अनुपान—६ माशे मधु। समय—प्रातः और सायं। उपयोग—आन्त्रिक शोथ तथा व्रणों की अवस्था में लाभप्रद है।

ज्वरवेग का ह्रास अथवा शीताङ्गावस्था

बृहत्कस्तूरीभैरव १ रत्ती, संजीवनीवटी २, अनुपान—आर्द्रक स्वरस। समय—दो-दो घण्टे उपरान्त

अथवा-मकरध्वज १ रत्ती। अनुपान—पान का रस ३ माशा। समय—आवश्यकतानुसार, देश-काल-अवस्था आदि का विचार कर उपयोग में लाना चाहिये।

उक्त प्रयोगों द्वारा शीताङ्गावस्था शीघ्र दूर होकर नाड़ी की गति ठीक होती है तथा ज्वर स्थिर हो जाता है।

अनिद्रा

१. खसखस के तैल को शिर पर मर्दन करने से नद्रा आती है।

२. विजया तैल को शिर पर तथा पैर के तलुओं पर मर्दन करने से निद्रा अवश्य उत्पन्न होती है। निद्रा लाने के लिये यह अव्यर्थ औषधि है।

३. एरंडबीज को जलाकर काजल पारना पश्चात् इसको नेत्रों में अंजन करने से अनिद्रा अवश्य दूर होती है।

४. कस्तूरी को घोट कर नेत्रों में आँजना लाभप्रद है।

५. जायफल अथवा अफीम को जल में घोट कर नेत्र-टोपों पर प्रलेप करने से निद्रा आ जाती है।

६. इन्द्रजौ अथवा भाँग के चूर्ण को बकरी के दूध में पीसकर पैर के तलुओं पर प्रलेप करने से निद्रा उत्पन्न होती है।

७. निद्रावर्धन रस, १ से ४ वटी पर्यन्त। अनुपान—जल। समय—रात्रि।

कास-श्वास

सितोपलादि चूर्ण, तालीसादि चूर्ण, लवङ्गादि चूर्ण, लवङ्गादि वटिका, मरिचादि वटिका, शृंगभस्म, प्रवालभस्म, श्वासकुठार, चौसठ्ठी पिप्पली, च्यवनप्राश अवलेह, तथा वासावलेह; इन अनुभूत औषधियों में से समयानुसार जो उपयुक्त समझें रोगी की अवस्थानुकूल मात्रा किंवा अनुमान द्वारा उपयोग करके आरोग्य लाभ पहुँचा सकते हैं।

वमन

१. वमनामृत वटी अथवा कर्पूरादि वटी मधु द्वारा आवश्यकतानुसार उपयोग करने से अवश्यमेव लाभ होता है।

२. सितोपलादि चूर्ण २ माशा तथा भर्जित डोंड़ा का चूर्ण ४ रत्ती मधु द्वारा चटावे।

३. एलादि चूर्ण ३ माशा। अनुपान—मधु समय—आवश्यकतानुसार।

४. कचूर का चूर्ण ४ रत्ती, ३ माशे मधु द्वारा सेवन कराना चाहिये।

५. गुडूची का क्वाथ शीतल होने पर मधु मिलाकर पिलाना।

तृष्णा

१. पीपल वृक्ष की छाल को जलाकर जल में बुझा देना चाहिये। इस जल को छानकर पिलाने से पिपासा, वमन और अतिसार शान्त होते हैं।

२. चाँदी अथवा खर्पर को अग्नि में गर्म करके जल में बुझा लें, इसी जल को पिलाना चाहिये। इससे तृषा शान्त हो जाती है।

३. नागरमोथा तथा लौंग को जल में डालकर अर्धावशेष औटाकर रखें, इसे छानकर पिलाने से पिपासा मिटती है।

४. डोंड़ा छिल्कासहित किंवा कमलगट्टा दोनों को तवे पर भूनकर चूर्ण कर रखें। मात्रा—१॥ माशा। अनुपान—३ माशा मधु।

५. बर्फ़ के टुकड़े को मुख में रखकर चूसने से तृषा शांत होता है।

मूर्च्छा

१. चूना बुझा हुआ १ भाग, तथा नवसादर २ भाग, दोनों को मिलाकर शीशी में भरकर बन्द रखें, इसे समय पर सुँघाना।

२. श्वासकुठार रस को पीसकर इसका नस्य देना चाहिये।

३. शिर पर बादाम के तैल का मर्दन करना चाहिये।

४. सिरस के बीज, पीपल, कालीमिर्च, सेंधा नमक, लहसुन, शुद्ध मैनशिल, वच; इन औषधियों को समान भाग लेकर कूट-छान लें। इसको गो-मूत्र में मर्दन कर बत्ती बना रख लेना तथा जल में घिसकर नेत्रों में आँजन करना चाहिये। इससे मूर्च्छा तथा तन्द्रा नष्ट होती है।

५. मूर्च्छा के आरम्भ-काल में मुख एवं नेत्रों में शीतल जल को छिड़कना।

जिह्वा कण्टकावृत

कभी-कभी इस उपद्रवयुक्त अवस्था में रोगी की जिह्वा खराब हो जाती, और फट भी जाती है। उक्त परिस्थिति में मुनक्का, इन्द्रजौ, छुहारा तीनों को समान भाग लेकर मधु में घोटकर जिह्वा पर घर्षण करना चाहिये।

जड़त्वदूरीकरण

त्रिकुटा (सोंठ, कालीमिर्च, पीपल), अमलबेत, सेंधा नमक, सबको सम भाग लेकर चूर्ण कर लें। इसको आर्द्रक रस में मिलाकर जिह्वा पर घर्षण करने से जड़ताधिक्य के कारण नष्ट हुई जिह्वा की परिचलन शक्ति एवं स्वाद (रस) ग्रहण-शक्ति पुनः प्राप्त होकर जड़ता नष्ट होती है।

कृशताधिक्य

व्याधि से आरोग्य हो जाने पर रोगी को कृशताधिक्य होता है, अतएव कृशतानाशक निम्नौषधियों का सेवन हितावह है—स्वर्ण वसंतमालिनी १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण १ माशा। अनुपान—६ माशे मधु। समय—प्रातः और सायं तथा भोजनोपरान्त १ तोला द्राक्षासव, १ तोला शुद्ध जल मिलाकर पिलाना चाहिए।

अथवा-प्रवालपंचामृत २ रत्ती, अमृतासत्व ४ रत्ती।

अनुपान—च्यवनप्राश अवलेह ६ माशा। इसे सेवन करने के आध घण्टे बाद एक पाव गोदुग्ध औटाया हुआ मिश्री मिलाकर पिलाना।

समय—प्रातः और सायं।

भोजनोपरान्त १॥ तोला कुमार्यासव, १ तोला शुद्ध जल से।

अथवा-अश्वगन्धारिष्ट का सेवन कुमार्यासव के समान कराना उत्तम है।

प्रलाप

जिस समय रोगी को प्रलाप तथा मूर्च्छा अधिक हो, उस स्थिति में जहाँ तक हो सके रोगी से सर्वथा बातचीत न की जाय। उसके समीप अधिक भीड़ एकत्रित न होने दे। और अन्य प्रकार की आहट (शोरगुल) न करके पूर्ण शान्ति रखना चाहिए। तथा रात्रि समय में रोगी के शयनागार में अँधेरा रखना चाहिए।

अभ्रकभस्म सहस्रपुटी, मकरध्वज रस, बृहत्कस्तूरीभैरव, समीरपन्नग रस, इनमें से एक कोई औषध निश्चित करके रोगी के अवस्थानुकूल अनुपान और आयु के अनुसार मात्रा निर्धारित कर उपयोग करने से प्रलाप तथा हृदय-दौर्बल्य दूर होकर हृद्गति को उत्तेजना प्राप्त होती है। और हिमाङ्गावस्था नष्ट होकर नाड़ी की गति स्वस्थ हो जाती है।

अथवा-ब्राह्मी चूर्ण ३ माशा, शंखपुष्पी चूर्ण १॥ माशा, मकरध्वज १ रत्ती, तीनों का मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर रखना।

अनुपान—६ माशा मधु से चटाकर ऊपर से गोदुग्ध पिलावे। समय आवश्यकतानुसार।

इससे प्रलाप नष्ट होकर मस्तिष्क को शक्ति प्राप्त होती है और अनिद्रा-दोष शीघ्र शान्त होता है। इसके अतिरिक्त अंगूर का सिरका, ईख का सिरका, अर्क गुलाब और गन काहू ये चारों समान भाग मिलाकर मस्तिष्क में मर्दन करने से प्रलाप शान्त होकर शीघ्र चेतनाशक्ति पैदा होती है।

यकृत्-प्लीहा-वृद्धि

यकृत् तथा प्लीहा की प्रायः सामान्य चिकित्सा है, अतः इनकी विकृत अवस्था में निम्न औषधोपचार करना उत्तम है। शुक्तिभस्म २ रत्ती, शंखभस्म ४ रत्ती, त्रिफलाचूर्ण ३ माशा, सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर ले।

अनुपान—२॥ तोले उष्ण जल। समय—प्रातः और सायं।

भोजनोपरान्त रोहितकारिष्ट अथवा कुमार्यासव १ तोला, शुद्ध जल १ तोला मिलाकर दोनों समय सेवन कराना चाहिए।

यकृत्-शोथ

यदि यकृत् पर शोथ हो, स्पर्श करने पर पीड़ा होती हो, तो यह लेप लगाना लाभप्रद है।

एलुवा, कतीरा, अजवायन, अंजीर, काले तिल, पीली सरसों; सब द्रव्य समान भाग लेकर सिरके में पीसकर गर्म कर लें और एक कपड़े की पट्टी पर मोटा लेप फैलाकर यकृत् स्थान पर लगावें।

शूल पर

एरंडबीज १५ नग, आटा मूँग ऽ–, हल्दी चूर्ण १ माशा, हींग ४ रत्ती, घृत १ तोला।

विधि—एरंडबीज को जल में पीसकर उसमें सब औषधियों को मिलाकर मन्दाग्नि से तप्त कर लेप तैयार कर लेना। इसे प्लीहा, यकृत्, वायुगुल्म, ऊरुग्रह पर गर्म-गर्म लेप लगाने से उनका शूल शीघ्र शान्त हो जाता है।

फुफ्फुसप्रदाह

यह उपद्रव मन्थरज्वर की महान् कष्टप्रद अवस्था का द्योतक है। इस दशा को मन्थरक श्वसनकज्वर टाईफ़ाइडिक न्यूमोनिया (Typho-Pneumonia) कहते हैं। अधिकतर कफ उल्वण होने के कारण यह उपद्रव उद्भूत होता है। अतः सर्वप्रथम चिकित्सा प्रारम्भ करते समय रोगी के श्वासमार्ग तथा वायु-नलिकाओं का अवरोधकारक कफ पूय आदि दूषित पदार्थों को बाहर निकालने और कृशता उत्पन्न करने-वाले समस्त कष्टकारी उपसर्गों के दूरीकरणार्थ प्रयत्न करते रहना चाहिए। तथा निम्नलिखित तीन बातों की ओर विशेष लक्ष्य रखना आवश्यक है।

१. फुफ्फुसों का संचित श्लेष्मा (कफ) तरल

होकर बाहर निकल जाय, साथ ही शोथ कम हो जाय।

२. फुफ्फुसों में श्लेष्मा एकत्रित होना बन्द हो जाय।

३. रोगी का हृदय दुर्बल न होने देना चाहिए। फुफ्फुसज शोथ कम करने के लिए प्रथम रोगी को अर्क-मूलत्वक् चूर्ण १५ से ३२ रत्ती अथवा ३० से ६० रत्ती तक अवस्था और आवश्यकतानुसार सेवन कराना चाहिए। कफ तरल करने के लिए सितोपलादि चूर्ण १॥ माशा, चौसष्ठी पिप्पली ४ रत्ती, शृङ्गभस्म १ रत्ती, यवक्षार २ रत्ती, सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर लेनी।

अनुपान—३ माशे मधु। समय—दिन में ४ बार।

अथवा—अग्निरस २ रत्ती, नवसादर ४ रत्ती, इनका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार करें।

अनुपान—६ माशा वासा लेह। समय—आवश्यकतानुसार।

अथवा—संजीवनी वटी २, मकरध्वज १ रत्ती, शृङ्गभस्म २ रत्ती, वासाक्षार २ रत्ती; इन सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर लेनी चाहिए।

अनुपान—आर्द्रकरस अथवा वासावलेह ६ माशा।

समय—३-४ घण्टे के उपरान्त अथवा समयानुसार उपयोग करें।

अथवा—केवल संजीवनी वटी अर्कादि क्वाथ के साथ सेवन कराना चाहिए।

पार्श्वपीड़ा

फुफ्फुस का संचित कफ तरल होकर निकलने तथा शोथ के कम होने पर पार्श्व-पीड़ा क्रमपूर्वक कम होने लगती है। तथा जिस प्रकार पार्श्व-पीड़ा कम होगी उत्तरोत्तर ज्वर भी उतरता जायगा।

स्थानिक

पीड़ा स्थान पर निम्न प्रयोग उत्तम है--२॥ तोले बकरी के दुग्ध में साबर के सींग को घिसकर उसमें ४ रत्ती हींग मिला गर्म करके प्रलेप करना और ऊपर से परिषेक करना चाहिए।

अथवा—सरसों का तैल, तारपीन का तैल, तथा देशी कपूर, तीनों को मिलाकर कुछ गर्म कर ले। इसकी मालिश करके उष्णजल रबर (Hotwater Bottle) की थैली में भरकर उससे सेंक करने से लाभ होता है। पीड़ा अधिक होने पर अलसी की पुल्टिस की सेंक चालू रखना चाहिए. अथवा एकमात्र एन्टीफ्लोजिस्टीन (Antiflogistine) का लेप लगाना पीड़ा के लिए लाभदायक है।

फुफ्फुस तथा हृदय-दौर्बल्य के लिए

इस भयङ्कर उपद्रवनिवृत्ति के उपरान्त प्रायः फुफ्फुस तथा हृदय दुर्बल हो जाते हैं। अतएव इनको क्रिया ठीक करने और इन्हें शक्तिसम्पन्न बनाने के लिए अधोलिखित ओषधियाँ एक पक्ष पर्यन्त नियमानुसार सपथ्य सेवन कराना चाहिए।

प्रवालपंचामृत १ से ४ रत्ती तक, च्यवनप्राश अवलेह ६ माशे से १॥ तोले तक के साथ मिलाकर खिलावें। १५ मिनिट पश्चात् गोदुग्ध गुनगुना पिलावें। इसे प्रातःसायं सेवन करावें तथा भोजनोपरान्त २ तोला द्राक्षासव और २ तोला शुद्ध जल मिलाकर दोनों समय सेवन कराने से शक्ति संगृहीत होकर अग्नि संदीप्त होती है।

इस सम्मिलित व्याधि में भी कास, श्वास, अतिसार आदि उपसर्ग उपस्थित रहते हैं, एतदर्थ इसके दूरीकरण के लिए पूर्वकथित उपचार उत्तम हैं। अतिरिक्त व्याधि की अवस्थानुकूल चिकित्सा की व्यवस्था करना विद्वान् वैद्य का परम कर्तव्य है।

पिडिकालुप्त

मन्थरज्वर के प्रथम सप्ताह के अन्त में और द्वितीय सप्ताह के प्रारम्भ में पिडिका-प्रदर्शन अर्थात् दाने अच्छी प्रकार दिखना आरोग्यता का प्रधान लक्षण है।

यदि पिडिका प्रकाशित न हों अथवा अल्प प्रमाण में प्रदर्शित होकर लुप्त हो जायँ, तो इस परिस्थिति में निम्न प्रयोग फलप्रद सिद्ध हुए हैं।

१. संजीवनी वटी २, मुक्तापिष्टी १ रत्ती, शृङ्गभस्म २ रत्ती, उक्त औषधत्रय का मिश्रण कर एक मात्रा तैयार करके रखना। अनुपान--३ माशा मधु, ऊपर से निम्नलिखित क्वाथ पिलाना चाहिये। मुनक्का १ तोला, तुलसीपत्र १ तोला, खूबकला २ तोला

इनको ऽ। जल में डालकर जोश देवें, जब ऽ- शेष रहे तब छानकर सेवन करावें। समय—औषध ५-५ घंटे के उपरान्त मधु द्वारा दिया जाय, किन्तु क्वाथ केवल प्रातः-सायं औषध-सेवन के पश्चात् पिलावें।

२. मन्थरज्वरारि वटी १, संजीवनी वटी १, शृङ्गभस्म १ रत्ती, इनका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर लेवें। अनुपान—लौंग १ तोला, खूबकला १ तोला; इनको ऽ। जल में क्वाथ करें, २॥ तोला शेष रहने पर छान लें, ६ माशा मधु मिश्रित कर इस क्वाथ के साथ औषध सेवन करावें। समय—दिन में ४ बार अथवा आवश्यकतानुसार। औषध के साथ प्रत्येक समय में क्वाथ सेवन कराना आवश्यक है।

३. संजीवनी वटी २, अथवा मकरध्वज १ रत्ती, शृङ्गभस्म १ रत्ती, प्रवालपिष्टी १ रत्ती, शुक्तिभस्म २ रत्ती; इन सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर लेना चाहिये। अनुपान—तुलसीपत्र रस १॥ माशा, मधु ३ माशा। समय—४-४ घंटे के पश्चात् समयानुसार प्रयोग करें।

कोष्ठबद्ध

मन्थरज्वर के पूर्व अथवा प्रथम सप्ताह में अनेक रोगियों को कोष्ठबद्ध (क़ब्ज़) रहता है, जिसके कारण उदराध्मान, शूल आदि उपद्रव होकर दोषों की वृद्धि करते हैं। अतएव रोगी के अवस्थानुसार

अधोलिखित मृदुविरेचक औषधों का सामयिक उपयोग करना उत्तम है।

विरेचक वटी—मुनक्का बीजरहित १० तोला, सनाय ५ तोला, श्वेत जीरा भुना हुआ ४ तोला, सेंधा नमक २॥ तोला, छोटी इलायची के बीज १ तोला, इन सब ओषधियों को कूट-छानकर मुनक्का मिलाकर छोटे जंगली बेर के समान वटी बनाकर रख लेना चाहिये। मात्रा—१ से ४ वटी पर्यन्त।

अनुपान—आधपाव उष्ण जल। समय—रात्रि में सोते वक्त अथवा आवश्यकतानुसार।

पञ्चसकार चूर्ण

सोंठ, सौंफ़ सनायपत्र, सेंधानमक, बड़ी हरड़ का छिलका, ये पाँचों ओषधियाँ समान भाग लेकर चूर्ण करके छान रखें; मात्रा—१॥ से ६ माशे तक। सेवन काल—रात में सोते समय।

अनुपान—एक छटाँक से आधपाव तक उष्ण जल द्वारा। इसके सेवन से आध्मान और उदरशूल शान्त होकर कोष्ठबद्धता नष्ट होती है। समय—रात को सोते वक्त।

अथवा—जुलाफ़ा का चूर्ण कपड़े से छान कर रखना। मात्रा—१॥ से ६ माशे पर्यन्त।

अनुपान—१॥ तोला गुलक़न्द अथवा ६ माशे मिश्रीचूर्ण मिलाकर सेवन कराना। इसके ऊपर एक प्याला तुलसीपत्र की चाय दालचीनी मिलाकर पिलाना

समय—आवश्यकतानुसार। इसके उपयोग से १-२ दस्त अवश्य आ जाते हैं। यदि रोगी अधिक अशक्त हो, किन्तु विरेचन कराने की विशेष आवश्यकता प्रतीत हो तो इस अवस्था में औषध-प्रयोग सर्वथा अनुचित है, अतएव वस्तिविधान अर्थात् एनीमा का उपयोग करना उत्तम है।

वस्ति-विधान

साबुन-मिश्रित उष्ण जल आधसेर, एरंड तैल एक छटाँक, निर्वात स्थान में समयानुसार सविधि प्रयोग करने से सद्यः विरेचन होकर कोष्ठ-शुद्धि होती है।

भयभीत, बालक, अत्यन्त कृश रोगी के लिये निम्न क्रिया करनी उचित है। रोगी को शोधित हरड़, मुरब्बा हरड़, गुलक़न्द, सिकी हुई मुनक्का, तथा त्रिफला चूर्ण इनमें से समयानुकूल जो उपयुक्त समझें सेवन कराना चाहिये।

अथवा—साबुन का फेन और एरंड तैल दोनों को मिला लें, इसमें एक अंगुष्ठ प्रमाण मलमल के कपड़े की बत्ती को भिगोकर गुदद्वार पर रखें। साथ ही उदर पर एरंड तैल का मर्दन करके सेंक देने से शीघ्र एक लघु विरेचन हो जाता है। अधिक कोष्ठबद्धता की अवस्था में अश्वकंचुकी रस का उपयोग करना उत्तम है।

उपज्वर-चिकित्सा

कभी-कभी रोग का आक्रमण पुनर्वार हो जाता है। उस समय अभ्रक भस्म शतपुटी १ रत्ती, सितोपलादि

चूर्ण १ माशा, दोनों का मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर लेना चाहिये। अनुपान—३ माशे मधु। समय—दिन में तीन बार तक। उक्त औषध के सेवन कराने से सद्यः लाभ होता है। अन्य औषध सेवन कराने की आवश्यकता नहीं। रोग के पुनराक्रमण के समय रोगी अत्यन्त दुर्बल हो जाता है। इसलिए शीतज्वर आने लगता है। जिसे आँग्ल चिकित्सक (डॉक्टर) मलेरिया फ़ीवर (Malarial fever) समझकर क्विनाइन अथवा क्विनाइनसम्मिलित औषध का प्रयोग करने लगते हैं, जिसका परिणाम प्रायः हानिकर पाया गया है।

मेरे अनुभव से उस समय ज्वर उतारने अथवा सहसा रोकनेवाली ओषधियों का व्यवहार करना हितकर नहीं है, अपितु दौर्बल्य दूर होने पर ज्वर स्वतः शान्त हो जाता है।

अनेक मन्थरज्वरपीड़ित पुरुषों को ज्वर-संताप प्रायः १०० डिग्री तक प्रत्येक समय रहता है। अतः इस ज्वर को दूर करने के लिए क्विनाइन सदृश तीव्रतर और अधिक ओषधियों का उपयोग करना उचित नहीं। यह सामान्यज्वर-संताप प्रायः उष्ण ओषधियों के उपयोग करने से ही उत्पन्न हुआ करता है। ज्वर-निवारक ओषधि प्रयोग करने की अपेक्षा निर्बलता-निवारक ओषधि एवं पथ्य-पालन करने से ज्वर-संताप स्वयमेव शान्त हो जाता है।

निर्बलता-निवारक योग

वसंतकुसुमाकर रस १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण १ माशा, दोनों को मिश्रण कर रखें। यह एक मात्रा तैयार हुई। अनुपान--३ माशा मधु, ऊपर से एक पाव औटा हुआ गोदुग्ध पिलाना। समय—प्रातः तथा रात्रि को।

अथवा—स्वर्णबसन्तमालिनी १॥ रत्ती, चौसष्ठी पिप्पली ४ रत्ती, यह एक मात्रा है। अनुपान—३ माशा मधु। अथवा १ तोला च्यवनप्राश अवलेह। समय--प्रातः-सायं। अथवा--सितोपलादि चूर्ण १॥ माशा, अमृतासत्व १ माशा, चाँदी का वरक़ १; इन तीनों का मिश्रण कर एक मात्रा तैयार करना। अनुपान—३ माशे मधु, अथवा १ तोला मुरब्बा आँवला।

रोगी परिचर्या

परिचारक अर्थात् रोगी की सेवा-सुश्रूषा करनेवाला, चिकित्सा के साथ ही साथ रोगी-परिचर्या के निम्न नियमों का पूर्णतया पालन अवश्य करे, ताकि रोगी उपद्रव-रहित शीघ्र आरोग्य लाभ कर ले।

१. रोगी को प्रकाशपूर्ण स्वच्छ कमरे में रखना चाहिए। कमरे में अधिक वायु और अन्धकार तथा सीलन नहीं होना चाहिए। रोगी को भूमि पर न सुलाकर मूँज से बुनी हुई चारपाई अथवा पलँग पर स्वच्छ किंवा कोमल बिस्तर, जिसके ऊपर श्वेत चादर बिछा हुआ हो, पर शयन करावे।

२. यदि कमरा पक्का हो तो चूने के पानी अथवा फ़िनाइल से धोया जाय अन्यथा गोबर से लीप दिया जाय।

कमरे को नित्यप्रति दोनों समय झाड़ू से साफ़ कराने के बाद दिन में दो-तीन बार गुग्गुल तथा निम्ब-पत्रों की धूप कर देनी चाहिए, ऊदबत्ती जलाना अथवा अन्य सुगन्धित औषधियों सहित शाकल्य से हवन करना चाहिए।

३. बिछाने और पहिनने के वस्त्र स्वच्छ धुले हुए नित्यप्रति परिवर्तन करा देना चाहिए। जहाँ तक हो सके रोगी को काले, पीले, नीले रंगवाले वस्त्रों का उपयोग कदापि न करावें और सदा श्वेत वस्त्रों का व्यवहार कराना उत्तम है।

४. रोगी के समीप एक-दो मनुष्यों से अधिक का आवागमन तथा शोर-गुल (अशांति) न किया जाय। एवं कमरे में सड़ी-गली दुर्गन्धित वस्तुएँ न रखनी चाहिए।

५. परिचारक पढ़ा-लिखा कुशल हो, जो कि रोगी की परिचर्या वैद्य के आदेशानुसार नियमपूर्वक पालन कर सके।

६. परिचारक को चाहिए कि दो-दो घंटे के उपरान्त तापमापक यंत्र (Thermometer) द्वारा रोगी के ज्वर-संताप की परीक्षा करके ज्वर का ताप, कागज़ पर लिख लिया करे। ताकि वैद्य वह कागज़ देखकर चिकित्सा में सहायता पा सके। साथ ही एक

नक़शा (Chart) तैयार कर ले, जिसमें दिन-रात के ओषधि-सेवन एवं दूध, फल आदि पथ्य देने का समय तथा रोगी-परिचर्या का ब्योरेवार विवरण लिखा रहना चाहिए।

७. पिडिकाओं (दानों) के प्रकाशनार्थ रोगी के कण्ठ में मुक्ताहार पहिनाना चाहिए। परन्तु इस समय सब श्रेणी के पुरुषों को मुक्ताहार मिलना दुर्लभ है, अतएव सच्चे मोतियों के दो-चार दाने रोगी के कण्ठ में तथा मणिबन्धों पर श्वेत वस्त्र में रखकर बाँध दे और पीने के जल में भी उबालते समय अनबिंधे मोतियों को स्वच्छ वस्त्र में बाँध पोटली बनाकर डाल देना चाहिए।

८. यदि रोगी को वमन और अतिसार आरम्भ हो तो उसके ऊपर चूना अथवा राख डालकर शीघ्र साफ़ करके गोबर से लिपवाकर वह स्थान स्वच्छ करा देना चाहिए। ध्यान रखें कि इस समय रोगी के लिए बाह्य वायु, शीतल जल और अधिक श्रम हानिकर हैं, उनसे बचावें। रोगी को स्वच्छ कर शीघ्र शान्तिपूर्ण विश्राम करा दे।

९. रोगी के समीप मक्खी-मच्छड़ न आने पावें, इसके लिए नीम की छोटी-छोटी टहनियाँ डुलाकर दूर करते रहना चाहिए। मच्छड़ों की अधिकता के कारण यदि रोगी को अनिद्रा उपसर्ग उपस्थित हो तो रात्रि समय में मसहरी बाँध देना चाहिए। ताकि निद्रा निर्विघ्न आवे।

१०. लहसुन, प्याज़, हींग इत्यादि उग्र गन्ध से रोगी को बचाना चाहिए। इस प्रकार की तीव्र गन्ध द्वारा रोगी के लिए मूर्च्छा, प्रलाप आदि भयङ्कर उपसर्ग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। अतः ऐसी वस्तुओं का उपयोग न करावे।

११. रोगी को अस्पृश्य वर्ग के स्पर्श से बचाना चाहिए।

१२. रोगी के कमरे में रात्रि समय घृत अथवा तिल्ली के तैल का दीपक जलाना अच्छा है। तथा कमरे को सदा स्वच्छ रखना चाहिए।

१३. पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः ॥
(वीरसिंहावलोकन)

पूर्वाचार्यों के उक्त मतानुसार महामृत्युञ्जय एवं दुर्गासप्तशती का पाठ, असहाय-अनाथों को अन्नदान, हवन करना, तथा देवता-गुरुजनों का पूजन करना आदि रोगी की व्याधि के दूरीकरण में सहायक होते हैं। जहाँ तक हो सके पाठ, हवन, देवपूजन यह सब रोगी के माता-पिता अथवा अन्य शुभचिंतक को स्वयं करना श्रेयस्कर है।

पथ्यापथ्य

मन्थरज्वर में रोगी को अरुचि हो तो आहार बन्द कर देना चाहिए। और इच्छा प्रबल होने पर हलका, शीघ्र पचनेवाला, दोषों को न बढ़ानेवाला आहार प्रकृति

के अनुकूल देना चाहिए। युवा अथवा बलवान् रोगी को किसी भी प्रकार का आहार न देने से आम और कफादि दोषों का शीघ्र पाचन हो जाता है। अतएव सर्वप्रथम लंघन कराना ही उत्तम है। जब तक कि दोषों का पाचन होकर अग्नि प्रदीप्त न हो जाय तब तक अन्नाहार का सर्वथा परित्याग करना चाहिए।

यदि रोगी बालक, वृद्ध, दुर्बल, गर्भिणी स्त्री हो तथा उपवास कराने की आवश्यकता प्रतीत न हो तो मूँग और परवल का यूष (शोरबा) तथा प्रकृति-अनुकूल सेब, सन्तरा, अनार, अंगूर, मुनक्का, मौसम्बी आदि गुणकारी फलों का रस देना उचित है।

पुराने पतले चावल, बाजरे की दलिया, धान का लावा, कूटू का लावा, गेहूँ अथवा यव का यवागू सेंधानमक और कालीमिर्च मिलाकर देना अथवा पंचकोल चूर्ण (सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल छाल,) को मिलाकर देना चाहिए।

आलूबुखारा, पोदीना, मुनक्का की चटनी, सेंधा-नमक तथा कालीमिर्च मिलाकर अरुचि और मुखविरसता की अवस्था में उपयोग कर सकते हैं।

जलविधान

नदी, तालाव, बावड़ी का जल अथवा इनके समीप-वाले कुएँ का या जिस कुएँ के जल का व्यवहार न होता हो, अथवा जिसमें वृक्षों के पत्ते गिरकर सड़ गये हों, दुर्गन्ध आती हो, ऐसा जल रोगी के लिए नहीं

देना चाहिए। पवित्र उत्तम कुएँ के ताज़े जल का उपयोग करना चाहिए। जल प्रत्येक अवस्था में औटा-कर देना अच्छा है। जल प्रातःकाल का औटाया हुआ सायंकाल तक तथा सायंकाल का औटाया रात्रि तक पिलाना चाहिए।

दोषा के अनुसार निम्नलिखित परिमाण से जल औटाकर दे--

वात के दोष अधिक होने पर ४ सेर का २ सेर। पित्त के दोष अधिक होने पर ४ सेर का ३ सेर। कफ के दोष अधिक होने पर ४ सेर का १ सेर।

अतिसार होने पर--अष्टमांश ४ सेर का आध सेर जल शेष रहने पर पिलाना उत्तम होगा।

जल औटा लेने के बाद मोटे वस्त्र से छान लिया जाय और स्वयं शीतल होने पर पिलाया जाय। परन्तु पंखे से शीतल न करना चाहिए, कारण कि वह जल विष्टम्भी हो जाता है।

जल को औटाने के समय १४ तुलसीपत्र तथा ७ लौंग डाल देनी चाहिए। अथवा रोगी के अवस्था-नुकूल विचारकर न्यूनाधिक कर लेना चाहिए और जब द्वितीय-तृतीय सप्ताह में ज्वर शान्त हो जावे, तब तुलसीपत्र तथा लौंग न डाले, केवल जल को औटाकर ४ सेर का ३ सेर शेष रहने पर छानकर पिलाना चाहिए।

सिद्धोपचारपद्धति

पाश्चात्य डॉक्टर मन्थरज्वर के उपचार में अनेकों बार असफल होते देखे गये हैं। जहाँ ये असफल हुए हैं, वहाँ पर वैद्यों ने आयुर्वेदीय सिद्धोपचार द्वारा रोगी को आरोग्य प्रदान कर सफलता प्राप्त की है।

उपर्युक्त अवस्थाओं के वर्णन से पाठकों को यह जान लेना चाहिए कि मन्थरज्वर इक्कीस दिन की अवधि समाप्त कर आरोग्य होनेवाली व्याधि है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा द्वारा मन्थरज्वर के लक्षण तथा तज्जन्य उपद्रव किसी अवस्था (द्वितीय सप्ताह) में भी नहीं बढ़ पाते और रोगी तृतीय सप्ताह पर्यन्त अवश्य आरोग्यलाभ प्राप्त कर लेते हैं।

रोगी रजिस्टर द्वारा उद्धृत उदाहरण

१. रजिस्टर नं० ११, नाम कुँवर लालकुमार जू देव, जाति क्षत्री, आयु १४ वर्ष। ज्वर आने के १५ वें दिवस ता० १३।६।३४ को प्रातःकाल रोगी मुझे दिखलाया गया। इसके पूर्व नगर के नामाङ्कित डॉक्टर मैलेरिया का ट्रीटमेंट कर रहे थे। किन्तु व्याधि मन्थरज्वर थी, कोष्ठबद्ध और कास उपद्रव उपस्थित थे। रोगी के कण्ठ से छाती पर्यन्त पिडिकाएँ चमक रही थीं, जिसे डॉक्टर साहब पसीने से पैदा हुई फुंसियाँ बतलाते थे। अस्तु!

सर्वप्रथम कोष्ठबद्ध दूर करने के लिए—जुलाफा चूर्ण ६ माशे की मात्रा दी गई, ६ माशे मिश्री चूर्ण

मिलाकर ऊपर से आधपाव उष्ण जल पिलाया गया। आध घंटे बैठे रहने पर जब दस्त न हुआ तब पुनः एक छटाँक उष्ण जल पिलाने पर ५ मिनट बाद बदबूदार बँधा हुआ दस्त आया, जिसमें २-३ गाँठें थीं तथा दस्त का रंग काला था। रोगी को चौथे दिन यह एक दस्त हुआ था।

औषधि--संजीवनी वटी १, मन्थरज्वरारि वटी १, मुक्तापिष्टी १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण १ माशा, सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार की, इस प्रकार ४ मात्राएँ दी गईं। एक मात्रा १२ बजे दी, दूसरी ४ बजे दिन में और तीसरी ८ बजे रात्रि के समय ३ माशे मधु द्वारा दी गई। कास के लिए लवंगादिवटिका मुख में रख रसास्वादनार्थ दी गई। ८ बजे प्रातःकाल ज्वर-संताप १०२° ही था, किन्तु औषधि प्रयोग करने के उपरान्त २ बजे मध्याह्न में ज्वर-संताप १०१° तथा सायंकाल ७ बजे रोगी को देखा तो ज्वर-संताप १०२° ही था। औटाया हुआ जल स्वतः शीतल होने पर रोगी के लिए पीने को दिया गया। सेब, अनार और गोदुग्ध जो पहले से दिया जा रहा था वही चालू रहा।

रोगी के वर्तमान लक्षण

तृषा, दाह, उदरशूल और शिरःशूल जो प्रातःकाल पाये गये थे, उनमें से केवल एक उपद्रव तृषा ही उपस्थित था, शेष सब शान्त थे।

१६ वाँ दिवस—आज प्रातःकाल पुनः देखा। ज्वर-संताप ९९° था। रोगी आज स्वस्थ दशा में था। शौच शुद्ध हुआ। पिडिकाएँ उदर तक आ निकलीं तथा तृषा आदि शान्त थीं और निद्रा अच्छी आई। चिकित्सा पूर्ववत् प्रारम्भ रही।

१७ वाँ दिवस—प्रातःकाल ज्वर-संताप ९८॥° था। रात्रि में निद्रा अच्छी आई। केवल पेट में भारीपन था। अतएव लवणभास्कर चूर्ण ६ माशे उष्ण जल से दिया गया। फलस्वरूप २ घंटे उपरान्त एक दस्त आया। साथ ही अपानवायु भी सरण हुई। अतिरिक्त दशा उत्तम थी।

चिकित्सा—पूर्ववत् चालू रखी गई।

१८ वाँ दिवस—आज प्रातःकाल रोगी को देखा तो नाड़ी की गति उत्तम थी। ज्वर-संताप ९८° था। पिडिकाएँ कम थीं। शौच साफ हुआ। निद्रा भली भाँति आई।

चिकित्सा—पूर्ववत् चालू रही।

१९ वाँ दिवस—ज्वर-संताप शान्त था। पिडिकाएँ (दाने) यत्र-तत्र प्रदर्शित हो रही थीं। शौच साफ हुआ। मूत्र स्वच्छ वर्ण का था। आज रोगी को सायंकाल में देखा, अवस्था अच्छी रही।

चिकित्सा—पूर्वानुसार प्रारम्भ थी।

२० वाँ दिवस—ज्वर-संताप पूर्णरूपेण शान्त था। पिडिकाएँ नहीं थीं। कास शान्त थी। शरीर में हलकापन

था। चित्त की प्रसन्नता, भोजनेच्छा आदि सभी लक्षण विद्यमान थे।

चिकित्सा—संजीवनी वटी, मन्थरज्वरारि वटी, लवंगादि वटी, सितोपलादि चूर्ण इन्हें बन्द कर केवल मुक्तापिष्टी १ रत्ती, प्रवालपिष्टी १ रत्ती, गुर्च सत्व २ रत्ती ; इनका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार की और ३ माशे मधु द्वारा प्रातःसायं यह औषधि आरम्भ की गई।

२१ वाँ दिवस—सम्पूर्ण चेष्टा उत्तम रही। शौच स्वच्छ हुआ। क्षुधा भी खूब लगी, किन्तु सिका हुई मुनक्का, सेब, दूध देने के अतिरिक्त आज परवल का यूष, भर्जित जीरा तथा सेंधानमकसंयुक्त प्रातःकाल दिया गया।

चिकित्सा—पूर्ववत् चालू रही।

२२ वाँ दिवस—आज रोगी को निम्ब जल से स्नान कराया गया। १० बजे मूँग की पतली दाल, पुराना चावल ; इसमें हिंग्वष्टक चूर्ण १॥ माशे मिलाकर दिया। सायंकाल के समय रोगी ने १० मिनट तक टेनिस खेली। औषधि मधु में न देकर ६ माशे च्यवनप्राश अवलेह के साथ दी गई, तथा गुर्चसत्व बन्द कर दिया। इस प्रकार औषधि ५ दिवस देने के बाद बन्द कर दी गई।

परिणाम—रोगी पूर्णरूपेण आरोग्य हो गया है।

× × × ×

२. रजिस्टर १६८०, नाम मालतीबाई, जाति—ब्राह्मण, आयु—२॥ वर्ष। ज्वर आने के पाँचवें दिवस

ता० १२।१०।३४ को सायंकाल के समय रोगी मुझे दिखलाया गया।

पूर्ववृत्त

इसके प्रथम एक वैद्यजी ज्वरातिसार की चिकित्सा कर रहे थे। किन्तु वास्तव में व्याधि थी मन्थरक श्वसनकज्वर एवं अतिसार उपस्थित था। ज्वर आने के उपरान्त २-३ दिवस तक वैद्यजी कुछ अन्न भी खिलाते रहे, और औषधि आनन्दभैरव रस दे रहे थे।

वर्तमान

ज्वर-संताप १०३° था। तृषा, आध्मान, अतिसार, उदरशूल, अनिद्रा, अरति आदि लक्षण विद्यमान थे। पिडिकाएँ कंठ में यत्र-तत्र दिखलाई पड़ रही थी। फुफ्फुस-प्रदाह तथा आन्त्रिक शूल भी था।

चिकित्सा

लवंग डाल कर अधौटा शीतल हुआ जल पीने को दिया, तथा संजीवनी वटी १, १॥ माशे मधु द्वारा दी गई। प्रथम मात्रा ४ बजे दिन, दूसरी रात्रि को ८ बजे दी। आज बालिका को मलबन्धक कोई औषधि नहीं दी गई थी।

६ ठा दिवस—रात्रि में ज्वर-संताप १०४° हो गया, तथा शौच ५-६ हुए। आज प्रातःकाल अवश्य ज्वर-संताप १०२° था।

चिकित्सा—संजीवनी वटी १, कर्पूरादि वटी १, शुक्तिभस्म १ रत्ती, शृंगभस्म आधी रत्ती।

सबका मिश्रण कर १ मात्रा तैयार की। इसे १॥ माशे मधु से दी। इस प्रकार ५-५ घंटे अंतर पर औषधि दी गई। खाने के लिए दूध, साबूदाना तथा सोंठ मिश्रित कर तैयार किया। गोदुग्ध का क्षीरपाक और अनार का रस दिया।

७ वाँ दिवस—आज ज्वर-संताप क्रम पूर्ववत् था, परन्तु दिन-रात्रि में शौच-संख्या केवल ३ से ४ तक रही।

चिकित्सा—पूर्ववत् प्रारम्भ रखी गई।

८ वाँ दिवस—ज्वर संताप १०१° रहा, शौच दिन-रात्रि में केवल तीन आये थे।

चिकित्सा—पूर्ववत्।

९ वाँ दिवस—ज्वर-संताप १०१° था। शौच ३ बार हुए। श्वेत मुक्तावत् पिडिकाएँ कंठ में स्पष्ट दिखलाई दीं। पार्श्वपीड़ा प्रारम्भ हुई, अतएव एन्टीफ्लोजिस्टिन (Antiflogistine) पीड़ा स्थान पर लगाया।

चिकित्सा—पूर्ववत् चालू रही।

१० वाँ दिवस—ज्वर-संताप पूर्ववत् था। शौच केवल दो हुए। तृषा आदि उपद्रव शान्त थे।

चिकित्सा—पूर्ववत् चालू रही।

११ वाँ दिवस—ज्वर-संताप १००° था। शौच पूर्ववत् थे। फुफ्फुसप्रदाह एवं पार्श्वपीड़ा कम थी।

चिकित्सा—पूर्ववत् ।

१२ वाँ दिवस—ज्वर-संताप १०१° था। शौच पूर्ववत् थे। तृषा की अधिकता थी।

चिकित्सा—पूर्वानुसार।

१३ वाँ दिवस—ज्वर-संताप पूर्ववत् था। पिडिकायें विशेष प्रकाशित हुईं। निद्रा भलीभाँति आई। अन्य उपद्रव शान्त थे।

चिकित्सा—पूर्ववत् प्रारम्भ थी।

१४ वाँ दिवस—ज्वर-संताप पुनः १०२° हो गया। शौचसंख्या पूर्ववत् थी। तृषा, अरति आदि उपसर्ग पुनः प्रबल हो उठे। कुछ कास की शिकायत भी पाई गई। एतदर्थ चिकित्सा में परिवर्तन किया। कर्पूरादि वटी की जगह कपर्दिक भस्म १ रत्ती दी गई। शेष औषधियाँ पूर्ववत् चालू रहीं।

१५ वाँ दिवस—ज्वर-संताप पूर्ववत् किन्तु शौच एक ही आया था। पिडिकाएँ छाती पर स्पष्टतया दिखलाई दीं। कास कम थी।

चिकित्सा—पूर्ववत् प्रारम्भ।

१६ वाँ दिवस—ज्वर-संताप पूर्ववत् परन्तु तृषा आदि उपद्रव शान्त थे।

चिकित्सा—पूर्ववत्।

१७ वाँ दिवस—ज्वर-संताप १०१° रहा, पिडिकायें छाती के नीचे पेट पर भी उतर आई थीं। निद्रा अच्छी आई।

चिकित्सा—पूर्ववत् प्रारम्भ रही।

१८ वाँ दिवस—ज्वर-संताप पूर्ववत् था। पिडिकाएँ पर्याप्त रूप में थीं। शेष उपद्रव शान्त थे। कोई मलीनता नहीं थी।

चिकित्सा—पूर्ववत् चालू थी।

१९ वाँ दिवस—ज्वर-संताप १००° था, कास बिलकुल शान्त रही, निद्रा आई। पिडिकाएँ कंठ की प्रायः लुप्त हो गईं और क्रमशः जंघा पर्यन्त आ गई थीं।

चिकित्सा—पूर्ववत् प्रारम्भ रखी गई।

२० वाँ दिवस—ज्वर-संताप पूर्ववत् रहा। पिडिकाएँ कम थीं।

चिकित्सा—पूर्ववत् प्रारम्भ।

२१ वाँ दिवस—ज्वर-संताप ९९॥° रहा। शेष दशा पूर्ववत् थी।

चिकित्सा—पूर्ववत्।

२२ वाँ दिवस—ज्वर-संताप ९९° रहा, पिडिकाएँ प्रायः मुरझाई हुई थीं, परन्तु यत्र-तत्र चमकती हुई २-३ दिखती थीं।

चिकित्सा—पूर्ववत् प्रारम्भ रही।

२३ वाँ दिवस—ज्वर-संताप शान्त था, किन्तु सायंकाल में कुछ ऊष्मा रही।

चिकित्सा—पूर्ववत् चालू रही।

२४ वाँ दिवस—ज्वर-संताप शान्त था। शौच सर्वथा

बन्द थे। कास नहीं थी। निद्रा अच्छी आई। पेट हलका था। क्षुधा की अधिकता थी। शेष सभी उपद्रव शान्त थे। अवस्था अच्छी रही।

चिकित्सा—पूर्ववत् प्रारम्भ।

२५ वाँ दिवस—आज प्रातः बालिका को देखा। नाड़ी स्वस्थ थी। जिह्वा स्वच्छ थी। अवस्था अच्छी रही और बालिका बिस्तर पर बैठी हुई खेलती रही। ज्वर नहीं था। पिडिकाएँ न थीं।

औषधि—शृंग भस्म, शुक्ति भस्म, तथा कपर्दिक भस्म बन्द करके केवल संजीवनी वटी १, प्रवालपिष्टी आधी रत्ती, दोनों का मिश्रण कर १॥ माशे मधु के साथ दिन में तीन बार दी जाने लगी।

भोजन में साबूदाना बन्द करके पुराने गेहूँ की पतली रोटी के ऊपर का बक्कल तथा मूँग की दाल प्रातःकाल दी गई; मध्याह्न और सायंकाल के समय क्षीरपाक युक्त दूध दिया गया। जल में से लवंग हटाकर केवल औटाया हुआ ही जल पीने को दिया जाने लगा।

२६ वाँ दिवस—बालिका पूर्णरूपेण स्वस्थ थी क्षुधा अधिक थी।

चिकित्सा—पूर्ववत् प्रारम्भ रही।

२७ वाँ दिवस—अवस्था पूर्ण स्वस्थ थी। शौच स्वच्छ हुआ, मुख कान्तियुक्त था। अग्नि प्रदीप्त थी।

चिकित्सा—पूर्ववत् चालू थी।

ओषधि—आज के लिए और देकर बन्द कर दी गई ।

परिणाम—रुग्णा बालिका पूर्ण स्वस्थ हो गई ।

× × × ×

३. रजिस्टर नं० १०१४, नाम—समीउल्ला, जाति—मुसलमान, आयु—१० वर्ष, ज्वर आने के सातवें दिवस ।

ता० १-१०-३४ ई० को मध्याह्न समय रोगी मुझे दिखलाया गया ।

पूर्ववृत्त

इससे प्रथम शहर के मशहूर हकीम का इलाज फ़स्ली बुख़ार का हो रहा था, जिनके इलाज में मरीज़ को खाँसी ख़ुश्क पैदा हो गई थी । हालाँकि बुख़ार ज़रूर कम था, लेकिन नहीं के बराबर । पीने के लिए पानी कच्चा दिया जाता था । खाने को रोटी, अरहर की दाल और मुर्गी का शोरवा दे रहे थे ।

वर्तमान दशा

व्याधि—मन्थरज्वर थी । इस समय ज्वर-संताप १०३° था । कास, तृषा, वमन, शिरःशूल, अरति और दाह आदि लक्षण उपस्थित थे ।

चिकित्सा—लवंग डालकर औटाया हुआ अर्धावशेष जल का विधान आरम्भ किया गया, तथा लंघन प्रारम्भ कराये गये । किन्तु रोगी को पूर्व से ही अन्नाहार दिया जा रहा था, अतएव सर्वथा लंघन कराना उचित न समझकर केवल अंगूर, अनार का रस,

सेब तथा सिकी हुई मुनक्का, सेंधानमक, कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर सेवन कराया गया।

ओषधि—संजीवनी वटी १, मन्थरज्वरारिवटी १, सितोपलादि चूर्ण १ माशा, इनका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार की। इस प्रकार तीन मात्राएँ दी गईं। एक मात्रा मध्याह्न में १ बजे, दूसरी सायंकाल में ७ बजे।

अनुपान—१॥ माशे मधु तथा १॥ माशे तुलसी-पत्ररस।

८ वाँ दिवस—ज्वर-संताप पूर्ववत् था। कास, तृषा, दाह आदि उपसर्ग पूर्ववत् थे।

चिकित्सा—पूर्ववत् प्रारम्भ रही।

९ वाँ दिवस—ज्वर-संताप १०४° था, निद्रा नहीं आई, खाँसी अधिक थी।

चिकित्सा—पूर्ववत्।

१० वाँ दिवस—ज्वर-संताप १०३° था, खाँसी में कमी थी, शौच स्वच्छ हुआ, निद्रा आई, तृषा आदि उपसर्ग पूर्ववत् थे।

चिकित्सा—पूर्ववत् चालू।

११ वाँ दिवस—ज्वर-संताप १०२° रहा, कंठ में अनेकों पिडिकाएँ यत्र-तत्र चमकती हुई दृष्टिगत हुईं, शेष तृषा आदि उपसर्ग शान्त थे।

ओषधि—पूर्ववत्।

१२ वाँ दिवस—ज्वर-संताप १०२° था, कंठ-स्थान में

पिडिकाएँ घनी थीं, साथ ही वक्षःस्थल पर भी दिखलाई दीं, खाँसी कम रही, निद्रा अच्छी आई थी।

औषधि—पूर्ववत् चालू।

१३ वाँ दिवस—ज्वर-संताप पूर्ववत् था, पिडिकाएँ अधिक नहीं थीं, शौच स्वच्छ हुआ, रात्रि में ज्वर-संताप १०३° हो गया था।

औषधि—पूर्ववत् चालू रही।

१४ वाँ दिवस—आज प्रातः ज्वर-संताप १०२° रहा, खाँसी में कमी थी, शौच सख़्त गाँठदार हुआ, पिडिकाएँ कंठ और वक्षःस्थल पर अधिक रूप में दिखलाई दीं। सायंकाल के समय पंचसम चूर्ण ६ माशा, आधपाव उष्णोदक से दिया गया।

औषधि—पूर्ववत् चालू।

१५ वाँ दिवस—ज्वर-संताप पूर्ववत् था, शौच प्रातः बदबूदार हुआ और कुछ कालिमायुक्त था, दिन भर दशा उत्तम रही।

औषधि—पूर्ववत्।

१६ वाँ दिवस—ज्वर-संताप पूर्ववत् रहा, शौच प्रातःसायं दो हुए, खाँसी शान्त थी।

औषधि—पूर्ववत्।

१७ वाँ दिवस—ज्वर-संताप १०३° मध्याह्न तथा सायंकाल में १०२°॥ रहा।

औषधि—पूर्ववत् चालू।

१८ वाँ दिवस—ज्वर-संताप १०२° था, पिडिकाएँ

पेट पर से नीचे आ गईं। शौच दो हुए, निद्रा अच्छी आई। आज अंगूर देना बन्द कर दिया गया।

औषधि—पूर्ववत्।

१९ वाँ दिवस—ज्वर-संताप १०१° था, शौच एक हुआ, निद्रा अच्छी आई।

औषधि—पूर्ववत्।

२० वाँ दिवस—ज्वर-संताप १००° रहा, निद्रा आई, पिडिकाएँ जंघा तक आ गई थीं, शौच स्वच्छ हुआ. तृषा आदि उपसर्ग शान्त थे।

औषधि—पूर्वानुसार।

२१ वाँ दिवस—ज्वरसंताप ९९॥° रहा, नाड़ी की गति हलकी थी।

औषधि—पूर्ववत् चालू।

२२ वाँ दिवस—ज्वर-संताप ९८° था, खाँसी शान्त थी, शौच स्वच्छ हुआ था, निद्रा अच्छी आई, पिडिकाएँ कंठ से पेट पर्यन्त लुप्त थीं (प्रायः मुर्झाई हुई सी)।

औषधि—पूर्ववत् चालू रही।

२३ वाँ दिवस—ज्वर-संताप शान्त था, कास तथा तृषा आदि उपद्रव बिलकुल शान्त थे। निद्रा आई, शौच स्वच्छ हुआ, पेट हलका था, क्षुधा लग रही थी।

औषधि—पूर्ववत् चालू थी।

२४ वाँ दिवस—ज्वर नहीं था, रोगी पूर्ण स्वस्थ, क्षुधा की अधिकता आदि आरोग्यप्रद लक्षण उपस्थित थे। आज रोगी को पुराना चावल का भात, मूँग की

दाल, परवल का शाक इसका थोड़ा पथ्य प्रातःकाल आरम्भ कराया गया, तथा सायंकाल में दूध और फल दिये गये।

ओषधि--संजीवनी वटी १, प्रवालपिष्टी १ रत्ती, मुक्तापिष्टी १ रत्ती। इसकी एक मात्रा तैयार कर ३ माशे मधु द्वारा दिन में दो बार प्रातः-सायं दी गई।

२५ वाँ दिवस--अब रोगी पूर्ण आरोग्य अवस्था में है।

ओषधि--संजीवनी वटी की जगह १ रत्ती स्वर्ण वसंतमालिनी एवं ३ माशे सितोपलादि चूर्ण मधु के साथ दिया और भोजनोपरान्त १॥ माशे लवणभास्कर चूर्ण एक घूँट जल के साथ देना आरम्भ किया गया। इस प्रकार ओषधि पथ्य के सहित एक सप्ताह पर्यन्त शक्ति उत्पन्न होने के लिए चालू रही।

परिणाम--रोगी पूर्णरूप से आरोग्य हो गया।

× × × ×

४. रजिस्टर नं० ३१२, नाम—अनन्तराम की पत्नी, जाति नाई। आयु—१८ वर्ष, व्याधि—मन्थर-ज्वर-कर्णमूल।

ज्वर आने के छठे दिन रोगिणी मुझे दिखलाई गई।

पूर्ववृत्त

रोगिणी को कर्णिक एग्युमिक्श्चर दिया जा रहा था। किसी भी वैद्य अथवा डॉक्टर की नियमित चिकित्सा नहीं की गई थी।

वर्तमान दशा

ज्वर-संताप प्रातःकाल १०२° था। शिरःशूल, कोष्ठ-बद्ध, तृषा तथा कर्णमूल की पीड़ा के कारण रोगिणी जल इत्यादि पीने में भी अधिक कष्ट उठा रही थी। मूत्र रक्तवर्ण था, जिह्वा शुष्क तथा उसके किनारे और अग्रवर्त्ती भाग अरुणवर्ण एवम् मलिन था। रोगिणी को जल पूर्व से ही औटाया हुआ दिया जा रहा था। अन्न में अरुचि थी, अतः रोगिणी स्वयं कुछ आहार न ले रही थी।

औषधिविधान

संजीवनी वटी १, मुक्तापिष्टी १ रत्ती, अमृतासत्व ४ रत्ती, इनका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार की, जो प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल में दी गई।

अनुपान—१॥ माशा तुलसीपत्ररस तथा ३ माशा मधु। रात्रि के ८ बजे रोगिणी को पुनः देखा। ज्वर-संताप १०४° था। तृषा की अधिकता थी। ज्वराधिक्य की अपेक्षा नाड़ी की गति कम थी। कर्णमूल की पीड़ा के लिए गोमूत्र में पीस गर्म कर दशाङ्ग लेप लगा-कर सेंक की गई जिससे पीड़ा कम हुई।

७ वाँ दिवस—प्रातःकाल रोगिणी को देखा। ज्वर-संताप १०१॥° था। शौच स्वच्छ नहीं हुआ। कर्णमूल का शूल तथा शोथ कुछ शान्त था।

औषधि—पूर्ववत् चालू।

८ वाँ दिवस—परिचारक से पूछने पर ज्ञात हुआ

कि रात्रि में ज्वर-संताप १०४° था, किन्तु तृषा तथा शिरःशूल शान्त थे। आज प्रातःकाल ज्वर-संताप १०१° था। शौच स्वच्छ होने के लिए मृदुरेचक वटी २, आधपाव उष्ण जल से रात्रि को सोते समय सेवन करने को दी। इस समय खाने को मुनक्का सेंककर सेंधानमक तथा कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर दिलाई गई।

औषधि—पूर्ववत् चालू थी।

९ वाँ दिवस—प्रातःकाल रोगिणी को देखा, ज्वर-संताप १०२° था। शौच स्वच्छ बँधा हुआ श्याम वर्ण का था, जिसमें दो गाँठें दुर्गन्धित थीं। आज कंठ में और उसके नीचे पिडिकाएँ प्रदर्शित हुईं। शेष उपद्रव शान्त थे, किन्तु कर्णमूल में शूल हो रहा था।

औषधि—पूर्ववत् चालू रही।

१० वाँ दिवस—आज रुग्णा की पुनर्वार परीक्षा की, ज्वर-संताप १००॥° था। शौच साधारण बँधा एक हुआ। रात्रि में निद्रा अच्छी आई। मूत्र पीले वर्ण का था। कर्णमूल का शूल शान्त था। ता० १५।६।३५ ई० को आवश्यक कार्यवश प्रयाग तथा काशी-यात्रा के लिए जाना पड़ा, अतएव रोगिणी को आज सायंकाल के समय पुनः देखा। ज्वर-संताप १०२॥° था। तृषा, कर्ण-मूल उपद्रव शान्त थे।

औषधि—दस दिवस के लिए दे दी गई। पथ्य में सिके हुए मुनक्के, अंगूर, मीठा अनार, सेब, बाजरे का बारीक दलिया गोदुग्ध के साथ, धान का तथा कूट्टू का

लावा और लौंग एवं तुलसीपत्रमिश्रित औटाया हुआ जल पीने के लिए दिया जाता था।

ता० २।१०।३५ ई० को काशी-विश्व-विद्यालय से वापस आने पर आज प्रातःकाल रोगिणी को देखा। ज्वर-संताप सर्वथा शांत था। अन्य उपद्रव भी शान्त थे।

परिचारक से पूछने पर परिज्ञात हुआ कि जिस प्रकार अवस्था आज आपने देखी है, रोगिणी की यही अवस्था लगभग एक सप्ताह से इसी प्रकार क्रमपूर्वक आरोग्य हो रही है। रोगिणी को क्षुधा लगने पर दो दिन पूर्व मूँग की धुली हुई दाल, पुराना पतला चावल, परवल का शाक और रोटी खिलाई जाने लगी थी।

परिणाम—रोगिणी ता० २५।६।३५ को पूर्णतया आरोग्य हो गई।

× × × ×

५. रजिस्टर नं० ३४२, नाम—अब्दुलक़ादिर, जाति—मुसलमान, आयु—५ वर्ष। ज्वर आने के १५ वें दिवस रोगी औषधालय में लाकर दिखलाया गया।

पूर्ववृत्त

इसके प्रथम शहर के मशहूर मौला हकीम का इलाज जारी था। हकीम साहब मौसमी बुख़ार की दवा दे रहे थे। इस तरह पाँच दिन दवा चालू रही; लेकिन कोई फ़ायदा नज़र न आया। आख़िरकार एक वैद्य महाशय की चिकित्सा दस दिवस तक

आरम्भ रही। वास्तव में वैद्यजी का निदान ठीक था, किन्तु चिकित्सा अव्यवस्थित होने के कारण रोगी को कोई लाभ नहीं था। पिडिकाएँ कभी उत्पन्न होतीं तो कभी लुप्त हो जाती थीं, कभी शीतपूर्व ज्वर अनियमित आ जाया करता था।

रोगी के लिए किसी प्रकार का पथ्य पालन नहीं कराया जाता था। घृत, मीठा आदि दे रहे थे।

वर्तमान दशा

ज्वर, कास, आध्मान, यकृत्वृद्धि, उदरशूल, मन्दाग्नि, कृशता, ज्वरक्रम एक-सा स्थिर।

आज ता० १३।१०।३५ को प्रातःकाल ज्वर-संताप १०१° था। नेत्र धूम्रवर्ण किंचित् पीत, चंचल और आभाहीन थे। कोष्ठबद्धता के कारण पेट कड़ा था। जिह्वा किंचित् लालिमा लिये मटमैली-सी थी। मूत्र का वर्ण सरसों के तैल-जैसा था।

चिकित्सा—संजीवनी वटी १, शुक्तिभस्म २ रत्ती, शृंगभस्म आधी रत्ती, कपर्दिक भस्म आधी रत्ती, शृङ्गयादि-चूर्ण ४ रत्ती, सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर लेना चाहिये।

अनुपान—तुलसीपत्ररस १० बूँद तथा मधु १॥ माशा।

समय—दिन में चार बार।

१६ वाँ दिवस—ज्वर-संताप १०१° था। शौच

स्वच्छ नहीं हुआ। निद्रा अच्छी आई। कास का वेग कम था।

१७ वाँ दिवस—आज प्रातःकाल रोगी दिखलाया गया। ज्वर-संताप १००° था। कास का वेग अधिक, अनिद्रा, आध्मान ये उपद्रव उपस्थित थे।

चिकित्सा—पूर्ववत्। परन्तु आज प्रातः मुनक्का १ तोला अमिलतास का गूदा ६ माशा, गुलाब का फूल ६ माशा, सौंफ ३ माशा, सोंठ ३ माशा, सनायपत्र ३ माशा, कुटकी ३ माशा, मिश्री २ तोला इनको एक पाव जल में चतुर्थांश क्वाथ करके शीतल होने पर छानकर पिलाया गया। सिके हुए मुनक्के भी ५-६ दिये गये, दो घंटे उपरान्त एक दस्त साफ़ हुआ। जिसमें ३-४ गाँठें बदबूदार थीं। मल का वर्ण मटमैला था। आध घंटे पश्चात् एक दस्त पतला पीतवर्णवाला हुआ।

१८ वाँ दिवस—आज प्रातःकाल शौच स्वच्छ हुआ। ज्वर-संताप ९९॥° था। निद्रा अच्छी आई। कास कम थी। उदर में लघुता थी। आध्मान, उदर-शूल आदि उपद्रव शान्त थे।

चिकित्सा—केवल शृङ्गयादिचूर्ण के स्थान पर सितोपलादिचूर्ण का उपयोग किया गया।

शेष औषधि—पूर्ववत् चालू।

१९ वाँ दिवस—ज्वर-संताप कल रात्रि में १०१° था तथा आज प्रातःकाल ९९॥° था। निद्रा भली भाँति आई। शौच स्वच्छ न होने के कारण पेट में कड़ापन

था। कास शान्त थी। आज प्रातः कंठ के नीचे तथा छाती पर मुक्तावत् श्वेत चमकती हुई पिडिकाएँ यत्र तत्र प्रदर्शित हुईं।

चिकित्सा—पूर्ववत्। परन्तु रात्रि को मृदुविरेचक वटिका आधी दी गई दो घूंट उष्ण जल के साथ।

२० वाँ दिवस—आज प्रातःकाल रोगी को देखने घर गया। उदरशूल, निद्रानाश, व्याकुलता, कास शान्त, ज्वर-संताप १००° था। कोष्ठबद्धता थी। एनीमा द्वारा विरेचन कराया गया। फलस्वरूप आध घंटे के पश्चात् रोगी को पहला दस्त पतला, पीतवर्ण, दुर्गन्धित हुआ, १५ मिनट उपरान्त दूसरा दस्त बँधा हुआ, धूम्रवर्ण, आमयुक्त तथा ४-५ गाँठ सहित हुआ, नेत्र पीत वर्ण-युक्त मलिन थे। रोगी के उदर में मृदु पीड़ा हुई। अतः उदर पर तारपीन का तैल मर्दन कर पाँच मिनट तक परिषेक करने के पश्चात् पीड़ा शान्त हुई।

रोगी को विरेचन होने के उपरान्त शिथिलता हुई अतएव इस समय ज्वर-संताप ९९॥° था।

चिकित्सा—पूर्ववत्।

केवल इस अवस्थाविशेष में संजीवनी वटी २, आर्द्रक रस १॥ माशा द्वारा दी गई थी।

२१ वाँ दिवस—ज्वर-संताप ९९॥° था। कास, अनिद्रा आदि उपसर्ग प्रायः शान्त थे। आज पिडिकाएँ कंठ के नीचे प्रकाशित हुईं, जिनकी संख्या अधिक थी। आकार खसखस के समान था।

चिकित्सा—पूर्वानुसार। केवल कपर्दिकभस्म बन्द कर दी गई।

२२ वाँ दिवस—ज्वर-संताप पूर्ववत् था। शौच स्वच्छ हुआ, अनिद्रा थी, कास शान्त थी। पिडिकाएँ वक्षःस्थल और हृदय पर दिखलाई पड़ीं।

चिकित्सा—पूर्ववत्। अनिद्रा दूर करने को शिर पर खसखस के तैल का मर्दन कराया गया, तथा एरंडबीज का कज्जल नेत्रों में आँजा गया।

२३ वाँ दिवस—ज्वर-संताप ९८° था। शौच स्वच्छ हुआ। निद्रा भलीभाँति आई। कास शान्त थी। यकृत्‌विकार नष्ट हो रहा था। स्पर्श परीक्षा करने से कम मालूम पड़ता था, पिडिकाएँ नाभि पर्यन्त प्रकट हो रही थीं।

चिकित्सा—पूर्ववत्।

२४ वाँ दिवस—रोगी आज औषधालय में लाकर दिखलाया गया। ज्वरोत्ताप ९८° था। शौच बँधा हुआ श्याम वर्णवाला था। नेत्र पांडुतापूर्ण थे। मूत्र सरसों के तैल के समान किंचित् लालिमा लिये था। पिडिकाएँ मुर्झाई हुई थीं। कास का वेग शान्त था, किन्तु कभी-कभी कुछ ठसकी आती थी। निद्रा अच्छी आई। अग्नि प्रदीप्त था। नाड़ी की गति वेगवती थी। अन्य दोष शान्त थे।

चिकित्सा—पूर्ववत् चालू।

२५ वाँ दिवस—ज्वर-संताप ६७° था । निद्रा अच्छी तरह आई । शौच बँधा हुआ था । अशक्तता अधिक थी ।

चिकित्सा—स्वर्णबसन्तमालिनी आधी रत्ती, प्रवाल-पंचामृत २ रत्ती, सितोपलादिचूर्ण ४ रत्ती, इन सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार की ।

अनुपान—३ माशा मधु । समय—प्रातः, मध्याह्न और सायं ।

२६ वाँ दिवस—रोगी आज औषधालय में लाकर पुनर्वार दिखलाया गया । ज्वर-संताप कल रात्रि में ६६॥° था, किन्तु प्रातःकाल ६७° था । निद्रा अच्छी आई । कास सर्वथा शान्त थी । पिडिकाएँ प्रायः निर्मूल थीं । रोगी को क्षुधा अधिक थी । नेत्र स्वच्छ आभायुक्त थे । शौच नहीं हुआ ।

चिकित्सा—पूर्ववत् । केवल क्वाथ जो कि १७ वें दिवस में उपयोग किया था, पुनः उसका सेवन कराया गया ।

२७ वाँ दिवस—ज्वर-संताप शान्त था । शौच कल दो हुए और आज प्रातः एक हुआ । निद्रा भलीभाँति आई । शेष उपद्रव शान्त थे ।

चिकित्सा—पूर्ववत् प्रारम्भ ।

२८ वाँ दिवस—रोगी आज पुनः औषधालय में लाकर दिखलाया गया । ज्वर प्रायः शान्त था । शौच स्वच्छ हुआ । निद्रा अच्छी आई । क्षुधा आदि सभी लक्षण आरोग्यता के उपस्थित थे ।

चिकित्सा—पूर्ववत्।

२९ वाँ दिवस—रोगी को पुनर्वार देखा। ज्वर निःशेष था। पिडिकाएँ निर्मूल थीं। कास, अनिद्रा, आध्मान, कोष्ठबद्ध, यकृत्वृद्धि आदि उपद्रव शान्त थे। रोगी को क्षुधा एवं शक्ति की वृद्धि हो रही थी। नाड़ी वेगवती तथा बलवती थी। मूत्र स्वच्छ था। मुख कान्तिपूर्ण था। रोगी पूर्णरूपेण स्वस्थ दशा में था।

चिकित्सा—पूर्ववत्। आज औषधि तीन मात्रा देकर बन्द कर दी गई।

परिणाम—रोगी पूर्णतया आरोग्य हो गया।

विशेष ज्ञातव्य—जिस समय रोगी मेरी चिकित्सा में आया उस समय निम्न प्रकार पथ्य प्रारम्भ किया गया था। लौंग तथा तुलसीपत्र मिश्रित एक सेर का आध सेर शेष औटाया हुआ शीतल जल पीने को दिया जा रहा था। पुराने गेहूँ की चोकर मिली हुई रोटी के ऊपरवाला छिलका, धुली हुई मूँग की दाल परवल का शाक, पिप्पलीयुक्त गोदुग्ध का क्षीरपाक, कूटू तथा धान का लावा, मीठा अनार, अंगूर, सेब, मुनक्का, यही आहार दिया जाता था।

भिन्न अवस्था के रोगियों का वर्णन

सुशीला आयु ८ वर्ष, शरीर दुर्बल था।

इसे मन्थरज्वर हुए ४० दिन समाप्त हो चुके थे, ज्वर-संताप प्रातः १०२° तथा सायंकाल से १०४°

होकर रात्रि भर इसी प्रकार रहता था। पिडिकाएँ अनेक बार प्रकट होकर पुनः लुप्त हो जाती थीं। शुष्क काल के कारण बालिका अधिक बेचैन थी। अनिद्रा, उदरशूल, आध्मान इन उपद्रवों से युक्त अवस्था की चिकित्सा एक सहयोगी वैद्य द्वारा हो रही थी। किन्तु ४२ वें दिन जब कि बालिका की अवस्था मन्थरज्वर से संशोषी सन्निपात में परिणत होकर प्रलाप, तन्द्रा, वस्त्र फेंकना, काटना, उठ-उठकर भागना, ज्वर-संताप १०५॥°, कोष्ठबद्ध, कर्णबधिरता, कृशता, दोनों नेत्र श्यामवर्ण तथा चक्षुगोलक धँसे हुए, ये सब लक्षण उपस्थित हुए, तब वैद्यजी ने सलाह लेने के लिये प्रातःकाल मुझे बुलवाया। मैंने बालिका को देखकर सर्वप्रथम संशोषी सन्निपात रोग निश्चय कर वैद्यजी को संजीवनीवटी १, अभ्रकभस्म आधी रत्ती, मुक्तापिष्टी १ रत्ती, प्रवालपिष्टी १ रत्ती, अमृतासत्व ४ रत्ती; इसकी एक मात्रा तैयार कर ३-४ घंटे के अन्तर पर ३ माशे तुलसीपत्ररस द्वारा देने के लिये कहा। तथा कासवेगशमनार्थ सितोपलादिचूर्ण १॥ माशा, चौंसठ प्रहरी पिप्पली ४ रत्ती, ६ माशे वासावलेह के साथ दिन में तीन वार उपयोग करने को कहा।

ज्वर-संताप कम करने के लिये आइस वेग (Ice bag) बर्फ़ की थैली शिर पर रखाई। फलस्वरूप १५ मिनट बाद ज्वर-संताप १०५° रहा, १० मिनट बाद १०४° हुआ, तदुपरान्त आइस बेग बन्द कर दिया गया। इस २५ मिनट के बाद बालिका का प्रलाप, बेचैनी

तथा तन्द्रा दूर हुई। सायंकाल में ज्वर-संताप १०२° था, जो रात्रि तक इसी प्रकार बना रहा। परन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल १०१° रहा और मध्याह्न में १०२° हो गया। आज ज्वर-संताप की वृद्धि नहीं हुई। प्रलाप, तन्द्रा तथा वस्त्र फेंकना, काटना, भागना आदि भयंकर उपसर्ग शान्त थे। कासवेग कम था, किन्तु अनिद्रा, उदरशूल और आध्मान ये उपद्रव उपस्थित थे। अतएव ग्लेसरीन एनीमा का उपयोग कर शौच कराया गया, जिसमें ३-४ मल की काली दुर्गन्धित गाँठें निकलीं। साथ ही पीछे थोड़ा पतला मल सचिक्कण पीतवर्ण हुआ। शौच होने के उपरान्त उदरशूल और आध्मान शान्त थे। अनिद्रा के लिये रात्रि में शिर पर रोगन खसखस की मालिश की गई, जिससे निद्रा भली भाँति आई।

आहार में ओवल्टीन दूध के साथ और लवङ्ग-मिश्रित जल पीने के लिये प्रयोग किया जाता था जो आरम्भ रखा गया। आज से तीसरे दिन रोगी पुनः दिखलाया गया। अवस्था अच्छी थी। उपद्रव शान्त थे। ज्वर-संताप १०१° था। चिकित्सा पूर्ववत् चालू थी। चमकती हुई मोती की भाँति सफ़ेद पिडिकाएँ कंठस्थान में कहीं-कहीं दिखलाई दे रही थीं। बालिका निर्बल होने के कारण शान्त लेटी थी। वैद्यजी ने मेरे परामर्श से चतुरतापूर्वक एक सप्ताह तक उक्त चिकित्सा चालू रखी। फिर रोगी मुझे दिखलाया। अवस्था अच्छी थी, परन्तु पिडिकाएँ और ज्वर-संताप पूर्ववत् था। अतः अवस्थानुसार अधोलिखित औषधि आरम्भ की गई।

औषधि—संजीवनी वटी १, मुक्तापिष्ठी १ रत्ती, प्रवालपिष्ठी १ रत्ती, शृङ्गभस्म आधी रत्ती, सितोपलादि चूर्ण १ माशा; सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार की।

अनुपान—३ माशे मधु तथा १॥ माशा तुलसी-पत्र-रस।

समय—दिन में तीन बार। मैं रोगी को दूसरे दिन बराबर देखता रहता था। अवस्था सुधार पर थी।

ज्वर-संताप प्रातः १००° रहता था तथा रात्रि में १०१° हो जाता था। ३-४ दिन बाद पिडिकाएँ घनीभूत अगणित प्रमाण में प्रकाशित हुईं। कासवेग कम था। ज्वर-संताप प्रातः ९८° तथा रात्रि में ९९॥° रहता था, शेष उपद्रव शांत थे। इस प्रकार उक्त औषधि दस दिन तक सपथ्य सेवन कराई गई। इस समय ज्वर-संताप शान्त था। पिडिकाएँ मुर्झाई हुई कोमल थीं। अन्य उपद्रव भी शान्त थे। केवल कृशता, कास और मन्दाग्नि ये तीन उपसर्ग उपस्थित थे; अतएव निम्न-चिकित्सा प्रारम्भ की गई।

औषधि—स्वर्णवसंतमालिनी १ रत्ती, चौसष्ठी पिप्पली ४ रत्ती, दोनों का मिश्रण कर एक मात्रा तैयार की।

अनुपान—६ माशे च्यवनप्राश अवलेह। ५ मिनट बाद ऊपर से आधपाव गोदुग्ध में आधपाव शुद्ध जल, ५ नग मुनक्का, १ नग छोटी पीपल, ६ माशे मिश्री; इनका मिश्रण कर धीमी आँच में पकाया। जलीय अंश के जल जाने पर कपड़े से छानकर पीने को दिया जाता था।

कास के लिये लवंगादिवटिका मुख में रख रसास्वादनार्थ सेवन कराई जाती थी।

एक सप्ताह बाद बालिका को निर्वात स्थान में निम्बपत्र, बायबिडंग और अजवायन डालकर गर्म किए हुए जल से स्नान कराया गया। अब बालिका की अवस्था पहले की अपेक्षा अच्छी थी। शरीर में शक्तिसंचार, रक्त की अभिवृद्धि, मुख कान्तिपूर्ण, नाड़ी बलवती, अग्नि प्रदीप्त थी। कास प्रायः शान्त थी। हृदय-पार्श्व तथा पिंडलियों पर लाक्षादि तैल का मर्दन कराया जाने लगा। अवस्थानुसार अधोलिखित अन्नाहार आरम्भ कराया गया।

चोकर मिले हुए गेहूँ के आटे की मोटी रोटी के ऊपरवाला छिलका, मूँग की दाल का यूष पंचकोल मिला हुआ, परवल का शाक, बथुआ तथा चौलाई की भाजी, गोदुग्ध, फलों में मीठा अनार, अंगूर, अंजीर, सेव, संतरा, मुनक्का, साधारण उबाला हुआ जल पीने को दिया जाता था। बालिका को एक मास तक घृत, तैल तथा इनसे बने हुए पदार्थ, पक्वान्न, बाजारू मिठाई, गुड़, खटाई, लालमिर्च, लहसुन, गरम मसाले, गरिष्ठ तथा उष्ण पदार्थों का परहेज़ कराया गया। इस प्रकार पथ्यपूर्वक उक्त औषधि एक पक्ष पर्यन्त प्रारम्भ रही। परिणामस्वरूप बालिका पूर्ण स्वस्थ हो गई।

यदि सहयोगी वैद्य महोदय ज्वर उतारने के लिये महामृत्युञ्जय,-जैसे तीव्रतर रसों का सेवन न कराते

तथा परिचर्या पर पूर्ण ध्यान रखते तो शायद ही रोग मन्थरज्वर से संशोषी सन्निपात का स्वरूप धारण करता और न बालिका को ढाई-तीन मास तक चारपाई पर पड़े रहकर औषधि सेवन करानी पड़ती। परिचारक और घर के लोग तो इस लम्बी बीमारी से ऊब उठे थे, परन्तु बालिका के आरोग्य होने से परिचारक और चिकित्सक दोनों के श्रम सफल हुए।

× × × ×

इसी प्रकार दूसरा रोगी

नाम—भगवतीबाई, आयु—१४ वर्ष।

पाँच मास पूर्व मन्थरज्वर हुआ। उस समय डॉक्टरों के इलाज से यह विषम हो गया। परिणाम-स्वरूप रोगी को रोगशय्या पर पड़े हुए पाँच मास पूर्ण हो चुके थे। डॉक्टरों ने भली भाँति देखकर अपना अन्तिम निर्णय दे दिया कि रोगी के उदर में क्षय-ग्रन्थियों का प्रादुर्भाव हो गया है, अतः रोगी असाध्य है और इसके आरोग्य होने की कोई आशा नहीं। पाँच मास के पश्चात् रोगी मुझे दिखलाया गया।

उपस्थित लक्षण

उदर कोष्ठबद्धता के कारण कठिन था। यकृत्-प्लीहा की वृद्धि, नेत्र पीतवर्ण, मूत्र पीत, कभी रक्त वर्ण, नित्य मन्दज्वर का बना रहना, साथ ही रात्रि में ठंडक लगकर बढ़ जाता था। मैंने दूसरे ही

रोगी को रात्रि के समय देखकर ज्वर की परीक्षा की। परिज्ञात हुआ कि यह तो रात्रि को ठंड देकर चढ़नेवाला शीतपूर्वज्वर मन्थरज्वर से भिन्न है तथा यह विषमज्वर है। विषमज्वर के सम्पूर्ण लक्षण विद्यमान थे, जिसमें प्रधानतया रात्रि के समय ज्वर होने पर शिरःशूल, कटिशूल होता था, और प्रातःकाल कुछ स्वेद आकर ज्वर-संताप कम हो जाता था। ज्वर कम होने के पश्चात् शिरः-शूल आदि स्वतः शान्त हो जाते थे।

इस शीतपूर्वज्वर की ओर किसी भी डॉक्टर का ध्यान न पहुँचा। वह प्रातःसमय के स्वेदनिर्गम को क्षय के लक्षणों में सम्मिलित करते थे। परन्तु स्वानुभव द्वारा यह परिज्ञात हो चुका है कि एक व्याधि के साथ अनेक और व्याधियाँ भी सम्मिलित हो जाती हैं, जैसा कि 'रोगी रजिस्टर द्वारा उद्धृत उदाहरण' शीर्षक स्तम्भ में संख्या २ रजिस्टर नं० १६८० नाम मालतीबाई, आयु २॥ वर्ष के रोगी को मन्थरज्वर के साथ श्वसनकज्वर सम्मिलित था। इसी प्रकार यहाँ भगवतीबाई नामक रोगिणी को भी दूषित हुए मन्थरज्वर के साथ विषमज्वर सम्मिलित था।

अतएव सर्वप्रथम मैंने इस रोगिणी के लिये पंचसमचूर्ण ६ माशे उष्ण जल के साथ दिया, जिससे दो दस्त हुए। दूसरे दिन विषमज्वरविनाशक ज्वरेन्द्र-वज्र रस का सेवन कराया। साथ ही त्रिफलाचूर्ण का दैनिक उपयोग करते रहे। अन्नाहार बन्द कर दिया

और फाड़ा हुआ दूध, अंगूर, अंजीर, मुनक्का, मौसम्बी; इन फलों का सेवन कराने लगे। फलतः पाँचवें दिन विषमज्वर का विनाश हो गया। तथा रात्रि में शीतपूर्व-ज्वर का आना, शिर शूल आदि उपद्रव नष्ट हो गये। एकमात्र मन्थरज्वर शेष रह गया, जिसकी अधोलिखित चिकित्सा आरम्भ की गई।

औषधि—मन्थरज्वरारिवटिका १, शृंगभस्म १ रत्ती, शुक्तिभस्म २ रत्ती, अमृतासत्व १ माशा; सबका मिश्रण कर एक मात्रा तैयार कर लेनी चाहिये।

अनुपान—पूर्वकथित मन्थरज्वर हर क्वाथ के साथ।

समय—दिन में दो बार। साथ ही रात्रि को सोते समय त्रिफलाचूर्ण का सेवन नियमित चालू रखा गया। इस प्रकार चिकित्सा करने पर प्रथम सप्ताह में ही उदर कोमल हुआ और यकृत्-प्लीहा की वृद्धि में क्रमशः कमी होने लगी। पाँच मास तक बराबर व्याधि-ग्रस्त होने के कारण रोगिणी का शरीर अधिक कृश हो गया था। द्वितीय सप्ताह में उदर की कठिनता पूर्णतः नष्ट हो गई थी। मैंने चिकित्सा में आरम्भ से ही कोष्ठकाठिन्य की ओर ध्यान रखकर मलशुद्धि कर औषधियों का उपयोग आवश्यक समझा और क्वाथ में दो विरेचनीय द्रव्य कुटकी और अमलतास का गूदा तथा रात्रि में त्रिफलाचूर्ण सम्मिलित रखा। इससे रुग्णा को बराबर दिन में दो बार दो दस्त आया करते थे। मल पिच्छल कभी श्यामवर्ण ग्रन्थियुक्त रहता था।

इस समय उदर के कोमल होने के कारण स्पर्श करने से उदरस्थित ग्रन्थियाँ स्पष्ट दिखलाई देती थीं। शनैः-शनैः रोगिणी की दशा सुधर रही थी। तृतीय सप्ताह के अन्त तक दूषित मल निकलने लगा, जिसमें मटमैले, दुर्गन्धित, सचिक्कण दस्त आ रहे थे। विरेचनों के बाद मन्थरज्वर नष्ट हो गया था। रोगिणी का उदर इतने विरेचन होने पर भी अभी तक पूर्णरूपेण शुद्ध नहीं हुआ था। और न यकृत्-प्लीहा अपनी प्रथमावस्था पर आये थे, तथापि उससे पूर्व ज्वर-संताप सर्वथा शान्त हो गया था। ज्वर-संताप निर्मूल हुए एक सप्ताह समाप्त हो गया और अवस्था आरोग्य रही। इसके उपरान्त उक्त औषधि बन्द कर दी गई। अब रोगिणी को मन्दाग्नि, रक्ताल्पता और कृशता यही उपसर्ग उपस्थित थे, जिसका प्रधान कारण यकृत-प्लीहा का विकार था, अतः यकृत्-प्लीहा का विकार नष्ट करने के लिए त्रिफला चूर्ण ३ माशे, मंडूरभस्म १ रत्ती, यह दो घूँट उष्ण जल के साथ दिन में दो बार दिया जाता था तथा भोजनोपरान्त २ तोला कुमार्यासव २ तोला ताजे जल के साथ दो बार सेवन कराया जा रहा था। इस प्रकार तीन सप्ताह औषधि आरम्भ रखी गई। रोगिणी को आहार पूर्वकथित 'पथ्यापथ्य' शीर्षक के अनुसार दिया जाता था।

परिणाम—भगवतीबाई पूर्णतया आरोग्य हो गई।

चिकित्सा में आई हुई ओषधियों का अकारादिक्रम से वर्णन

अ.

अर्कादि क्वाथ

अर्कमूल-छाल, धमासा, देवदारु, रासना, निगुण्डी, बच, अरणीपत्र, चित्रक, पीपलामूल, पीपल, चव्य, सोंठ, मुनगा (सहिजन) की छाल, अतीस, भृङ्गराज।

विधि—सब ओषधियों को समान भाग लेकर चूर्ण कर ले। इसमें से २ तोला चूर्ण लेकर एक पाव जल में क्वाथ करना। एक छटाँक शेष रहने पर कपड़े से छानकर उपयोग में लाना चाहिए।

गुण—त्रिदोषज्वर, निमोनिया, धनुर्वात, छाती और पार्श्व-पीड़ा में तत्काल लाभप्रद है। मन्दाग्निनाशक तथा स्वेदजनक है।

अग्निरस

कालीमिर्च, नागरमोथा, बच मीठी, मीठी कूठ, प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध वत्सनाभ ४ तोला।

विधि—सब ओषधियों का चूर्ण कर कपड़छान करे। इसको आर्द्रक रस से घोटकर रत्ती प्रमाण वटी बनावे।

मात्रा—१ से २ वटी पर्यन्त।

अनुपान—मधु, रूसा क्वाथ, मिश्री का शर्बत, आर्द्रक रस ।

समय—दिन में चार बार तक ।

गुण—कास, श्वास, प्रतिश्याय, निमोनिया, सन्निपातनाशक ।

अश्वकञ्चुकी रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध हरताल गोदन्ती, शुद्ध वत्सनाभ, त्रिफला, त्रिकुटा प्रत्येक १-१ तोला । शुद्ध जमालगोटा ३ तोला ।

विधि—सर्वप्रथम पारद और गंधक दोनों को खरल में डालकर घोटना । जब काजल के समान हो जाय तब अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर भृङ्गराज के रस की २१ भावना दे और उड़द बराबर वटी बनावे ।

मात्रा—१ से ४ वटी तक ।

अनुपान—शुद्ध जल ।

उपयोग—यह रस ज्वर के प्रारम्भ में विरेचन के लिए दिया जाता है । इससे कोष्ठ शुद्ध होकर ज्वर हल्का हो जाता है । यह रस हृदय की निर्बलतावाले किसी रोग में तथा हृद्रोग और सगर्भावस्था में न देकर, निर्बल मनुष्यों और बालकों को भी निर्भय होकर दी जा सकती है ।

अभ्रकभस्म

शोधन-विधि—काले अभ्रक के टुकड़ों को कोयले

की तीव्राग्नि में तपा-तपाकर ७ बार काँजी में, ७ बार बेरी की छाल के क्वाथ में, ७ बार त्रिफला के क्वाथ में बुझा लेना।

भस्म-विधि—इस प्रकार शुद्ध किए हुए अभ्रक के टुकड़ों को कूटकर महीन कर लें। अभ्रक से चतुर्थांश धान मिलाकर खद्दर की दोहरी थैली में भरें। थैली का मुँह मज़बूती से सी देना चाहिए। इस थैली को एक दिन पानी में भिगो दें, दूसरे दिन चौड़ी थाली अथवा परात में रखें और थोड़ा पानी डालकर मलें। इस थैली को हथेली से दबाकर खूब रगड़ते रहें। इस प्रकार रगड़ने से धान की रगड़ खाकर अभ्रक घिस-घिसकर बालू की तरह निकलकर पानी में जाता रहता है। इस पानी को निथारकर निकाल देने से नीचे धान्याभ्रक रह जाता है।

धान्याभ्रक को जलपालक अथवा कुकरौंधे के रस में घोटकर टिकिया बना लेना चाहिए। इन टिकियों को धूप में सुखाकर मिट्टी के बरतन में भरकर दूसरे शराव (दिये) से मुँह बन्द करके कपड़मिट्टी कर देना चाहिए। इस कपड़मिट्टी के सूख जाने पर एक सेर टिकियों का वज़न हो तो ३०-४० कंडों को ऊपर नीचे लगाकर, गजपुट में रखकर फूँक देनी चाहिए। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि औषधि का पुट बीच में रहे और अग्नि सारे गजपुट के नीचे से प्रदीप्त की जाय, जिसमें नीचे के कंडे कच्चे न रह जायँ। स्वाङ्ग-शीतल होने पर एक दिन बाद औषधि का पुट निकाल

लिया जाय। ऊपर लिखे अनुसार ७ पुट देना चाहिए। इसके बाद फिर ७ पुटवाले अभ्रक को पीसकर चौलाई के रस में ७ पुट देना चाहिए। इसी प्रकार आक के दूध की ३ तथा त्रिफला क्वाथ की ४ और बरगद की ऊपरी लटकती हुई जटा के रस की ३ पुट देना चाहिए। प्रत्येक बार में किसी ऊपर लिखी हुई ओषधि के द्रव में घोटकर टिकिया बना संपुट में रखकर कंडों का गजपुट देना चाहिए। इस क्रिया में नीचे लिखी बातों में कभी लापरवाही न करे। जो जल्दी करते हैं, वे ग़लती करते हैं।

१. "मर्दनं गुणवर्धनम्" के अनुसार घुटाई खूब होनी चाहिए।

२. ओषधि का रस ताज़ा होना चाहिए।

३ टिकिया खूब सूख जानी चाहिए।

४. पुट-पात्र पुख़्ता हो और उसकी ऊपरी कपड़-मिट्टी मज़बूत रहे तथा पुट देने से पहले खूब सूख जाय।

५. पुट में कंडे सावधानी से चुने जायँ, जिससे उनके बीच में बहुत अन्तर न रहे।

६. सर्वथा स्वाङ्गशीतल होने पर ही पुट खोली जाय। इन बातों में थोड़ी भी असावधानी करने से ओषधि का रङ्ग ठीक नहीं होता। गुण कम रहता है और कभी-कभी हानिकारक भी हो जाती है। प्रत्येक पुट में अभ्रक का वज़न बराबर घटता जाता है, यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए। इस प्रकार २५ पुट में

साधारण अभ्रकभस्म तैयार हो जाती है। अधोलिखित परीक्षा से उसमें कोई अन्तर हो तो कुछ अधिक पुट देना अच्छा है। हमारे स्वानुभव से तो शतपुटी (१०० पुट-वाली) अभ्रकभस्म विशेष गुणप्रद होती है।

परीक्षा—तैयार हो जाने पर चुटकी में दबाने से मुलायम हो। अँगुली हटाने पर अँगुली की रेखाएँ अभ्रकभस्म में स्पष्ट दिखाई देती हों। प्रकाश में रखने और दबाकर देखने से भी उसमें कोई कण न चमकता हो अर्थात् निश्चन्द्र हो तथा भस्म का रंग लाल हो।

विशेष ज्ञातव्य--अभ्रकभस्म सहस्रपुटी (१००० पुटवाली) तक तैयार की जाती है। उसमें अधोलिखित ओषधियों के रस अथवा काढ़े में १-१ या २-२ बार घोटकर पुट देनी पड़ती है। निम्न-ओषधियाँ अभ्रक को मारण करनेवाली हैं।

आक का दूध, थूहर का दूध, बरगद का दूध, बरगद की जटा, मकोय, वनतुलसी, जलपालक, कुकरौंधा, बेल की पत्ती, अड़ूसा, कदम्ब, शालिपर्णी, घीकुआर, गोखरू, गोमूत्र, गुड़, कायफल, नागरमोथा, बेर की छाल, कटाई, त्रिफला, अरणी, सरसों, पठानीलोध, गुर्च, भाँग, कसौंदी, धतूर, मरसा, ब्राह्मी, शतावर, मैनफल, असगंध, शंख-पुष्पी, पान, श्वेत पुनर्नवा, हस्तिशुण्डी, पृष्ठिपर्णी, तगर, सतोना, मूषाकर्णी, केले का रस, भृंगराज, चमेली, चौलाई, अगस्तिपत्र, अनारपत्र, सोनापाठा, एरंड, तालीसपत्र, चित्रक, मछेछी इत्यादि।

मात्रा—१ से २ रत्ती पर्यंत।

अनुपान—मधु या रोगानुसार।

समय—प्रातः-सायं अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग—सन्निपातज्वर, दोषों की अव्यवस्था, निर्बलता, वृद्धावस्था के दोष, मस्तिष्क की कमज़ोरी, वीर्य के दोषादि।

अश्वगन्धारिष्ट

असगंध नागौरी २॥ सेर, काली मूसली १ सेर, मँजीठ, बड़ी हर्र, हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, रासना, बिदारीकन्द, अर्जुनछाल, मोथा, तेवड़ीमूल प्रत्येक आध-आध सेर।

अनन्तमूल, काला अनन्तमूल, श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन, मीठी बच, चित्रकमूल प्रत्येक ३२-३२ तोला, सब ओषधियों का कूटकर ४ मन १२ सेर जल में काढ़ा करे। २८$\frac{1}{2}$ सेर शेष रहने पर उतारकर छान रखना चाहिए; इसे मिट्टी अथवा चीनी मिट्टी के पात्र में भरकर फिर उसमें धवई के फूल ६४ तोला, मधु १८$\frac{3}{4}$ सेर, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल प्रत्येक ८-८ तोला, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, प्रत्येक १६-१६ तोला, प्रियंगु १६ तोला, नागकेशर ८ तोला।

इन सब ओषधियों को कूट कपड़छानकर काढ़ेवाले पात्र में मिलाकर पात्र का मुँह अच्छी तरह कपड़-मिट्टी से बन्द कर ज़मीन में गाड़कर रख दे। एक मास के बाद पात्र को निकाल ओषधि को कपड़े से छानकर बोतल आदि में भरकर सुरक्षित रखें।

मात्रा—१ से २॥ तोले तक।

समय—कुछ आहार लेने के ५ मिनट बाद, दिन में दो बार प्रयोग करना चाहिए।

उपयोग—मूर्च्छा, अपस्मार, योषापस्मार, उन्माद, शोथ, अर्श, अग्निमान्द्य, अशक्तता और वायुजनित व्याधियाँ नष्ट होती हैं।

अमृतासत्व

विधि—अच्छी पकी हुई ताज़ी गुर्च (अंगुष्ठ-प्रमाण मोटी) को लेकर पत्ते निकाल दे। इसको खूब महीन कूटकर २० गुने जल में ३-४ दिन भिगोकर रख दे। फिर इसे मसलकर झिन्ने कपड़े से छान लेना चाहिए। जो जल कपड़े से निकलता है, उसी में सत्व रहता है। इसी छने हुए जल को १०-१२ घंटे तक बराबर आहिस्ते से निथार ले और पीछे धीरे-धीरे जल निकाल देना चाहिए। जल को इस प्रकार निकाले कि गुर्च का सत्व जो बरतन की तली में जम जाता है, वह हिलकर जल में न घुलने पावे। जब थोड़ा जल रह जाय, तब अन्य साफ़ जल मिलाकर हिला दे, जिसमें सब सत्व उसी में घुल जाय। बाद में निथार कर जल निकाल दे। इस प्रकार ३-४ बार करने से शुद्ध श्वेत गुर्च का सत्व नीचे बैठ जाता है। यह लसीला, गाढ़ा और सफ़ेद होता है। इसे छाया में सुखा-कर पीस-छानकर रख लें। मिट्टी या क़लईवाले पात्र में बनाने का ध्यान रखना चाहिए। बस, अमृता-सत्व तैयार है।

मात्रा--१ रत्ती से ३ माशे तक।

अनुपान--मधु, अनार का रस, आँवले का मुरब्बा, शर्बत बनफ़्शा।

समय—प्रातः-सायं अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग—जीर्णज्वर, पित्तज्वर, दाह, आँखों और तलुवों की दाह, प्रमेह, प्रदर, पाचनदोष, अरुचि, अशक्तता पर।

ए.

एलादि चूर्ण

छोटी इलाइची के बीज, फूलप्रियंगु, नागरमोथा, बेर की गुठली की गिरी, छोटी पीपल, सफ़ेद चन्दन, खील, लौंग, नागकेसर; प्रत्येक समान भाग लेना। सम्पूर्ण ओषधियों को कूटकर कपड़े से छान ले।

मात्रा—५ से २० रत्ती तक अथवा १ से ३ माशे तक।

अनुपान—मधु और मिश्री अथवा शर्बत अनार।

समय—दिन में दो से चार बार तक।

उपयोग—वात, पित्त, कफ से उत्पन्न हुई वमन (क़य), कास, हिक्का, तृषा, अरुचि और निमोनिया में कफ की चिपक को कम करने के लिए दिया जाता है।

क.

कल्पतरु रस

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गंधक १ तोला, शुद्ध

वत्सनाभ १ तोला, शुद्ध मैनशिल १ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला, सुहागा चौकिया फूला हुआ १ तोला, सोंठ २ तोला, छोटी पीपल २ तोला, कालीमिर्च १० तोला।

विधि—पहले पारद और गंधक की कज्जली कर लेना। फिर अन्य औषधियों का कपड़छान किया हुआ चूर्ण कज्जली के साथ बारीक घोट ले और आर्द्रकरस की १ भावना देकर रख छोड़े।

मात्रा—२ से ८ चावल तक अवस्थानुसार।

अनुपान—मधु अथवा पान का रस, आर्द्रकरस।

समय—प्रातः-सायं अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग—वातश्लेष्मज्वर, निमोनिया, इन्फ़्लूएन्ज़ा, तमकश्वास, श्लेष्मज कास, इसका नस्य देने से वात तथा कफजन्य शिरोरोग, प्रलाप, मोह, छिक्का अवरोध नष्ट होते हैं।

कनकसुन्दर रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गंधक, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध धतूर-बीज, कालीमिर्च, छोटी पीपल, सुहागा चौकिया फूला हुआ, प्रत्येक १-१ तोला लेना।

विधि—प्रथम शुद्ध द्रव्यों को घोट लेना फिर शेष औषधियों का चूर्ण मिलाकर भाँग के रस अथवा क्वाथ में खरल कर उड़द प्रमाण वटिका बनाकर रख लेना चाहिए।

मात्रा—१ से ४ वटिका तक।

अनुपान—मधु, तण्डुलोदक, दध्युदक।

समय—प्रातः-सायं अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग—तीव्रज्वर, ज्वरातिसार, अतिसार, प्रवाहिका, मरोड़ा, ग्रहणी और अग्निमान्द्य तथा कास-श्वास में देना चाहिए।

कर्पूरादि वटिका

अर्कमूल की छाल का चूर्ण १० तोला, अनीस चूर्ण २॥ तोला, देशी कपूर २॥ तोला, शुद्ध अफीम ६ माशा।

विधि—समस्त औषधियों को खरल में डालकर छने हुए ताज़े जल के साथ घोटकर मूँग के समान वटिका बनावे और छाया में सुखाकर शीशी में भर दे।

मात्रा—१ से ५ वटिका तक।

अनुपान—मधु तथा तण्डुलोदक, बेलगिरीक्वाथ।

समय—दिन में २ से ६ बार तक आवश्यकतानुसार।

उपयोग—ज्वर, अतिसार, आमातिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, कास, श्वास, वमन एवं विसूचिका-विनाशक है।

कपर्दिक भस्म

शोधनविधि—सफ़ेद, हलकी, पीली, गाँठवाली, वजन में भारी तथा चमकीली कौड़ियों को तोड़कर पोटली में बाँधकर काँजी में ४ घंटे तक स्वेदन करना

अथवा कौड़ियों का चूर्ण करके जँभीरी नींबू के रस में खरल कर एक दिन धूप में सुखावें।

भस्मविधि--कौड़ियों के टुकड़ों अथवा चूर्ण को ग्वारपाठे के गूदे के साथ शरावसम्पुट बनाकर गजपुट में जंगली कंडों की अग्नि में फूंक देना चाहिए। इसे कपड़छान करके रख लें, बस कपर्दिकभस्म तैयार है।

मात्रा—१ से ४ रत्ती तक।

अनुपान—मधु, उदररोगों के लिए जँभीरी नींबू के रस से और क्षयावस्था में मक्खन मिश्री के साथ।

समय--प्रातः-साय अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग—कास, अतिसार, संग्रहणी, क्षय, शूल, यकृत्, प्लीहा पर हितप्रद है।

कुटजारिष्ट

कुड़ा की छाल ५ सेर, मुनक्का दाख २॥ सेर, महुआ, गंभारी की छाल प्रत्येक आध आध सेर, इन सब औषधियों को जौकुट कर ५० सेर जल में क्वाथ करें, जब १२॥ सेर शेष रहे तब कपड़े से छान ले। इसमें धवई के फूलों का छना हुआ चूर्ण १ सेर, पुराना गुड़ ५ सेर मिलाकर मिट्टी के चिकने पात्र में अथवा चीनी की बर्नी में भरकर कपड़मिट्टी से मुख मुद्रित कर १ मास तक ज़मीन अथवा धान्यराशि में गाड़कर रख दे। संधानावधि पूर्ण होने पर निकाल ले और कपड़े से छान बोतलों में भर कार्क लगा रखें।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से २ तोला तक।

अनुपान—ओषधि के समान भाग जल मिलाकर पीना।

समय—प्रातः-सायं भोजनोपरान्त।

उपयोग—सब प्रकार के ज्वर। ज्वरसहित अथवा ज्वररहित रक्तातिसार, अतिसार, आमातिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी की प्रसिद्ध अव्यर्थ ओषधि है।

कुमार्यासव

ग्वारपाठा (घीकुँवार) का रस १२ सेर, पुराना गुड़ ५ सेर, मधु २॥ सेर, शुद्ध लौह चूर्ण २॥ सेर, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, लौंग, इलायची के दाने, दालचीनी, पत्रज, नागकेशर, चित्रकमूल, पीपलामूल, बायविडंग, गजपीपल, चव्य, हाऊबेर, धनिया, सुपारी, कुटकी, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, रासना, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, पोहकरमूल, खिरेटी, मूर्वा, गुर्च, जमालगोटे की जड़, कंघी, कौंच के बीज, गोखरू, सौंफ़, हिंगुपत्री (भौंफली), अकरकरा, उटंगन के बीज, श्वेत पुनर्नवा तथा रक्त पुनर्नवा, पठानीलोध, स्वर्णमाक्षिकभस्म, प्रत्येक. २-२ तोला। धवई के फूल ३२ तोला।

विधि—स्वर्णमाक्षिकभस्म के सिवाय सब ओषधियों का चूर्ण कर छान रखें, फिर सबको एकत्रित करके मिट्टी के चिकने पात्र में भरकर मुख मुद्रित करके १ मास तक ज़मीन में गाड़ दें। फिर कपड़े से छानकर बोतलों में भर कार्क लगा दें।

मात्रा--½ से २ तोले तक।

अनुपान--ओषधि के समान भाग जल मिलाकर पीना।

समय--प्रातः-सायं भोजनोपरान्त दिन में दो बार।

उपयोग--बलवर्धक, वर्णकारक, अग्निदीपक, धातु, रुचि तथा वीर्यवर्धक, परिणामशूल, आठ प्रकार के उदर-रोग, उदावर्त्त, स्मरणशक्ति की न्यूनता, मूत्रकृच्छ्र, हिस्टीरिया, ऋतुदोष, प्रमेह, पथरी, अर्श (बवासीर), कृमिरोग, रक्तपित्त तथा पुरानी क़ब्ज़ियत में उपयोगी है।

ग.

गंगाधर रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध अफीम, नागरमोथा, मोचरस, पठानी लोध, कुड़ा की छाल, बेल का गूदा, धवई के फूल, प्रत्येक ओषधि समान भाग लेना।

विधि--पहले पारद और गंधक की कज्जली करे, फिर और ओषधियों को कूटकर छान ले तथा आरंभ की तीन शुद्ध ओषधियों को छोड़ बाक़ी ६ ओषधियों के क्वाथ में खरल करके सुखा ले।

मात्रा--४ से १५ रत्ती तक।

अनुपान--मधु तथा तण्डुलोदक, बेलगिरीक्वाथ।

समय--दिन में दो से पाँच बार तक अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग--पुराना अतिसार, नवीन ग्रहणी, प्रवाहिका पर।

च.

चौसठी पिप्पली

पीपल १ सेर लेकर ३ दिन तक बकरी के दूध में भिगोना। दूध प्रति दिन बदलते रहना चाहिए। फिर पीपल को साफ़ पानी से धोकर इसके बीज लेना चाहिए। और चौंसठ पहर गुलाब जल में घोट लेना। घुटाई निरन्तर प्रारम्भ रहे, इसका अवश्य ध्यान रखना चाहिए। इसको कपड़े से छानकर शीशी में भर दें।

मात्रा--१ से ४ रत्ती तक।

अनुपान--घृत-मधु विषम भाग अथवा केवल मधु के साथ चाटना

समय—प्रातः-सायं

उपयोग—जीर्णज्वर, कफ, कास, श्वास और यकृद्विकार पर।

च्यवनप्राश अवलेह

बेल की छाल, अरणीमूल, सोनापाठा की छाल, कुंभार की छाल, पाढ़ल की छाल, खिरेटी, छोटा बलारा, बड़ा बलारा, बनउरद, बनमूँग, पीपल, गोखरू का पञ्चाङ्ग, बड़ी कटाई, छोटी कटाई, काकड़ासिंगी, भुंइआँवला, मुनक्का दाख, जीवन्ती, पोहकरमूल, काली अगर, छोटी हरड़, बहेड़ा, आँवला, गिलोय, वंशलोचन, नागौरी असगंध, कचूर, नागरमोथा, श्वेत पुनर्नवामूल, श्वेत चन्दन, कमलफूल, बिदारीकन्द, अडूसामूल, काकजंघा,

छोटी इलायची, अष्टवर्ग के अभाव में शतावरी, विदारीकन्द, असगंध, बाराहीकन्द डालना। प्रत्येक ओषधियाँ २-२ तोला लेना।

विधि—सब ओषधियों को जौकुटकर रात्रि में एक क़लईदार ताँबे के डेग में १६ सेर जल में ओषधियाँ भिगो दे। प्रातःकाल डेग को आग पर चढ़ा दे। डेग के मुँह पर मोटा कपड़ा बाँधकर उसमें अच्छे पके हुए गुलाबी रंग के आधी छटाँक वज़न वाले ५०० आँवले रखकर काढ़े की भाप में पका ले अथवा आँवले कपड़े की पोटली में ढीले बाँधकर लटका दे। पक जाने पर निकाल ले। जब १६ सेर जल का ४ सेर काढ़ा बाक़ी बचे तब डेग उतारकर काढ़ा कपड़े से छान ले।

अब आँवलों की गिरी निकालकर फेंक दे और आँवलों को अच्छी तरह हथेली से मलकर खद्दर के कपड़े में रगड़ कर छान लेना, फिर इस छनी हुई पिट्ठी को २४ तोला गोघृत में धीमी-धीमी आँच से भूने, तदुपरान्त क़लईवाली पीतल की कड़ाही अथवा तबेले में उक्त काढ़ा और ३ सेर मिश्री डालकर गोलीवाली कड़ी चाशनी बना ले। फिर इस चाशनी में आँवलों की पिट्ठी मिलाकर अग्नि से उतार ठंडा कर ले और कपड़े से छनी हुई शुद्ध मधु १२ तोला मिला दे। इसके अतिरिक्त अधोलिखित छना हुआ चूर्ण भी अच्छी तरह मिलावे—वंशलोचन बड़ा ८ तोला, छोटी पीपल ४ तोला, छोटी इलायचा दाने १ तोला, दालचीनी १ तोला, पत्रज १ तोला, नागकेशर १ तोला। बस च्यवन-

प्राशा वलेह तैयार है। इसे काँच या चीनी मिट्टी के बर्तन में रखनां चाहिये।

मात्रा—तीन माशे से १ तोले तक।

अनुपान—बकरी या गाय का गरम दूध अथवा केवल जल ५ मिनट बाद पीना चाहिये।

समय—प्रातः-सायं।

उपयोग—क्षय, कास, श्वास, अशक्तता, मूत्र में गँदलापन अथवा मवाद निकलना, कफ के साथ रक्त का आना, शरीर की उष्णता, यकृद्विकार, पुरुषों का प्रमेह, स्त्रियों का प्रदर तथा ऋतुदोष, बालकों का सूखा रोग, वृद्धों को रसायन है।

ज.

ज्वरेन्द्रवज्र रस

साम्हर शृंङ्गभस्म, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध धतूरबीज, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, पिपरामूल, प्रत्येक ५-५ तोला।

चूना के पानी में पकाया हुआ सुम्मल २ तोला, शुद्ध गोदन्ती हरताल १॥ तोला, शुद्ध पारद ५ तोला, शुद्ध गंधक ५ तोला, चौकिया सुहागा भुना हुआ ४ तोला, भुना हुआ करंजबीज चूर्ण १० तोला।

विधि—प्रथम पारद और गंधक दोनों को कज्जल के समान घोट लेना, फिर शुद्ध औषधियों का चूर्ण और अन्य औषधियों का कपड़े से छना हुआ चूर्ण

मिलाकर क्रमशः करेला के पंचाङ्ग का रस, तुलसी पत्र रस, सत्यानाशी (कटेरी) का रस, धतूरपत्ररस, अर्कपत्ररस, इनकी पृथक्-पृथक् १-१ भावना देकर घोट लें और रत्ती प्रमाण वटी बनाकर काम में लावें।

मात्रा—१ से ३ वटी तक।

अनुपान—तुलसी पत्र रस और मधु या मिश्री की चाशनी।

समय—प्रातः-सायं अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग—सर्व प्रकार के ज्वर, विशेषतया शीत-पूर्व विषमज्वर, जीर्णज्वर के लिए अव्यर्थ औषधि है।

त.

तालीसादि चूर्ण

तालीसपत्र १ तोला, कालीमिर्च २ तोला, सोंठ ३ तोला, छोटी पीपल ४ तोला, वंशलोचन बड़ा ५ तोला, छोटी इलायची के दाने ६ माशे, दालचीनी ६ माशे, मिश्री ३२ तोला।

विधि—सब औषधियों को कूट पीस कपड़छान कर रख लेना।

मात्रा—४ रत्ती से ३ माशे तक अवस्थानुसार।

अनुपान—मधु अथवा शर्बत बनफ़शा।

समय—दिन में दो से चार बार तक आवश्यकतानुसार।

उपयोग—कास, श्वास, शोष, वमन, अरुचि पर।

द.

दशांग लेप

सिरस की छाल, मुलहठी, तगर रक्तचन्दन, इलायची के दाने, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, कूट, नेत्रबाला।

विधि—सब औषधियों को समान भाग लेकर कूट कपड़छानकर रख लें। इसको गोमूत्र में पीसकर गर्म करके पीड़ा स्थान पर प्रलेप करना चाहिए।

उपयोग—विसर्प, विषदोष, विस्फोट, व्रण, व्रध्न, कर्णमूल तथा शोथ।

द्राक्षासव

मुनक्का दाख २॥ सेर, मिश्री १० सेर, धवई के फूल आध सेर वायविडंग, फूल प्रियंगु, कालीमिर्च, छोटी पीपल, छोटी इलायची के दाने, दालचीनी, पत्रज, नागकेशर, प्रत्येक ४-४ तोला लेना चाहिए।

विधि—पहले मुनक्का साफ़ करके धो डाले तथा अन्य औषधियों को कूटकर चलनी से छानकर एक चिकने घड़े में भर दे और इसमें १० सेर थोड़ा गुनगुना जल भर दे। पात्र का मुँह कपड़मिट्टी से बन्द कर ज़मीन अथवा धान्यराशि में गाड़ दे। २१ दिन के बाद इसे निकालकर कपड़े से छान बोतलों में भरे और कार्क लगाकर धूप में रखे। ३-४ दिन बाद २-३ बार छानकर पैकबन्द करके रख लेना चाहिए।

मात्रा—६ माशा से २ तोले तक अवस्थानुसार।

अनुपान—आसव से दूना ताज़ा जल मिलाकर काँच के गिलास या पत्थर की कुन्डी में डालकर पीना चाहिए।

समय—प्रातः-सायं भोजनोपरान्त।

उपयोग—क्षय, उरःक्षत, कास, श्वास, कंठरोग, कोष्ठबद्ध, उदरविकार, निमोनिया, रक्ताल्पता पर।

न.

निद्रावर्धन रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक अभ्रकभस्म, लौहभस्म, शुद्ध वत्सनाभ, सुहागा चौकिया भुना हुआ, सेंधा तथा काला नमक, बिड़ नमक, कांसिया नमक, जीरा, तज, लौंग; प्रत्येक औषधि समान भाग लेना चाहिए।

विधि—सब औषधियों को कूटकर कपड़े से छान लें, किन्तु सर्वप्रथम पारद और गंधक को घोट-कर कज्जली कर लेना। फिर सब औषधियों को एकत्रित कर निर्गुन्डी, भृंगराज, अड़ूसा और अपामार्ग के पत्तों का रस तथा गूमा के फल और आर्द्रक रस की १-१ भावना देकर १ रत्ती प्रमाण की वटिका बनाकर रख लेना चाहिए।

मात्रा—१ से ४ वटिका तक अवस्थानुसार।

अनुपान—मधु अथवा शीतल जल।

समय—रात्रि में सोने से दो घन्टे पूर्व अथवा आवश्यकतानुसार प्रयोग करना।

उपयोग—अनिद्रा (निद्रानाश), तन्द्रा, आलस्य, बेचैनी तथा बाह्य ऊष्मा और अभ्यन्तरीय शीत इस दशा में उत्तम लाभप्रद प्रमाणित हुई है।

प.

प्रवालपिष्ठी

मूँगा हलका, लाल रंग, चिकना, गोलाकार, बग़ैर घुना, वज़नी, तोड़ने में कड़ा, बड़ी जातिवाला। ऐसे मूँगे को अथवा इसकी शाख को कार्य में लाना चाहिए।

शोधनविधि--गोमूत्र, गोदुग्ध तथा त्रिफला क्काथ में १-१ पहर दोलायन्त्र द्वारा शोधन कर लेना चाहिए। फिर उष्ण जल से धोकर सुखा लें और कूट कर कपड़े से छान रखें। इसे गुलाब जल में २१ बार भावना देकर खूब घोटें और दिन को सूर्य की रोशनी (धूप) में खुला रक्खे। सूर्यास्त के बाद पुनः घुटाई करे। इस प्रकार भावना पूरी होने पर पीसकर कपड़े से छान रख ले।

मात्रा—आध रत्ती से ४ रत्ती तक अवस्थानुसार।

अनुपान—मधु, मक्खन-मिश्री, मलाई, गोदुग्ध।

समय--प्रातःसायं, दिन में तीन बार तक।

उपयोग--धातुविकार, मूत्र में होनेवाला वीर्य-स्राव, कास, क्षयरोग, नेत्ररोग पित्त की विकृति, मूर्छा, हिस्टीरिया, उन्माद पाचनदोष और साधारण निर्बलता में हितावह है।

प्रवालपंचामृत

प्रवाल (मूँगा) ८ तोला, मोती अनविधे ७ तोला, शुक्ति (सीपमोती) ३ तोला, शंखनाभि २ तोला, कौड़ी १ तोला।

विधि—सर्वप्रथम पाँचो औषधियों का शोधन करके कूट छान लेना, फिर गोदुग्ध, गन्ने का रस, घीकुँवार का रस, तुलसीपत्ररस, शतावरीरस, बिदारीकन्द और हँसपदी के रस की १-१ भावना पृथक्-पृथक् देकर दो-दो पहर तक घोटना। अन्त में घीकुँवार के रस से टिकिया बनाकर शरावसंपुटित करके जंगली कंडों में गजपुट द्वारा ५ बार अग्नि देना चाहिए। प्रत्येक बार घीकुँवार के रस से टिकिया बनाकर पुट देना चाहिए।

मात्रा—१ से ३ रत्ती अथवा २ से ६ ग्रेन तक।

अनुपान—मधु।

समय—दिन में दो वार प्रातःसायं।

उपयोग—साधारण निर्बलता, क्षय की अशक्ति, मूत्र में वीर्यस्राव होना, मन्दाग्नि, आध्मान, कास, पांडु, पृष्ठव्रण, गंडमाला पर।

म.

मकरध्वज रस

शुद्ध पारद ८ तोला, शुद्ध गंधक ४८ तोला, सोने का वरक़ १ तोला।

विधि—खरल में पारद डालकर घोटना और घोटते समय १-१ वरक़ डालते जाना। घोटने से वरक़ पारद में अदृश्य होता जाता है। जब वरक़ पारद में मिल जायँ तब थोड़ा-थोड़ा शुद्ध पिसा हुआ गंधक मिलाकर एक दिन घोटना चाहिए। घोटने से इसका रंग ठीक काजल जैसा काला हो जाता है और ध्यान देकर देखने पर भी इसमें पारद की चमक दिखाई नहीं देती। इसे कज्जली कहते हैं। कज्जली तैयार हो जाने पर कपास के फूलों का रस अथवा घीकुँवार का रस अथवा बरगद की लटकती हुई कोमल और सुर्ख जड़ों के रस से २–३ दिन तक घोटकर सुखा लेना चाहिए। इसके सूखने पर ७ कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भरना। आतशी शीशी इतनी बड़ी होनी चाहिए जिसमें कज्जली भरने पर नली छोड़कर शीशी का पौन हिस्सा खाली रहे, केवल चौथाई भाग में कज्जली भर जाय।

एक चौकोर बड़े चूल्हे पर मोटी नाँद या खूब मज़बूत चौड़े मुँहवाला मटका, जिसमें कज्जलीवाली आतशी शीशी आसानी से आ जाय और शीशा रख देने पर भी उसमें शीशी के चारों ओर कम से कम १०–१० अंगुल बालू भरी जा सके। फिर इस नाँद को चूल्हे पर चढ़ाया जाय और नाँद के पेंदे में बीचों-बीच आध इंच का गोल छेद कर दिया जाय। इसी छेद पर अभ्रक का पात्र रखकर कपड़मिट्टी की हुई कज्जली से भरी हुई आतशी शीशी सीधी रख दी

जाय और शीशी के गले तक नाँद में बालू भर दी जाय। नाँद के फूटने का भय हो तो प्रथम उसे लोहे के तारों से बाँधकर मज़बूत मिट्टी के गारे से लेप देना चाहिए। इसे वालुका-यंत्र कहते हैं। इस विधान के बाद चूल्हे में लकड़ी की तेज आग दी जाय। एक लोहे की लम्बी शलाका से यह देखना चाहिए कि कज्जली गलकर ढीली हो गई है या नहीं। कज्जली गल जाने पर आग कुछ कम कर दी जाय अन्यथा कभी-कभी कज्जली उबल कर शीशी से बाहर आ जाती है। यह मध्यमाग्नि बराबर ६ दिन ६ रात एक-सी जलती रहनी चाहिए। यदि शीशी के भीतर आग लगकर ज्वाला निकलने लगे तो तुरन्त शीशी के मुख पर कोई चीज़ ढक देना चाहिए। और थोड़ी देर बाद फिर खोल देना चाहिए।

जब शलाका देने से काला द्रव्य पककर कुछ लाल रूप में आने लगे तब शीशी के मुख पर ईंट या मिट्टी का डाट लगाकर शीशी बन्द कर दी जाय और २४ घन्टे आँच देकर बन्द कर देना चाहिए। २-३ दिन में बालू और शीशी शीतल हो जाने पर बालू हटाकर धीरे-धीरे शीशी निकाल लेना चाहिए। इस शीशी के तोड़ने से उसकी नली में या उससे नीचे लाल रंग की वज़नदार औषधि चिपकी हुई निकलती है। इसी को मकरध्वज या चन्द्रोदय कहते हैं। शीशी के नीचे भाग में जो भस्म निकलती है, उसमें स्वर्ण का अंश अधिक होता है। अधिकांश वैद्यबन्धु उसे स्वर्णभस्म

की जगह काम में लाते हैं और कई एक उसे दूसरी बार शीशी चढ़ाते समय कज्जली में मिला देते हैं।

परीक्षा—घिसने पर पीलापन या कालापन न रहे, मात्रा देने पर अवश्य लाभ हो। वज़नदार हो। रात को भी चमकता हो, घोटने से अधिक सुर्ख हो। यही परीक्षा है।

मात्रा—इसकी साधारण मात्रा आधी रत्ती की है और पूर्ण मात्रा आधी से डेढ़ रत्ती तक है। इसके अतिरिक्त रोगी का बल, रोग, ऋतु, समय को देखकर वैद्य इसकी मात्रा न्यूनाधिक भी कर सकते हैं।

अनुपान—सन्निपात में आर्द्रकरस या पान के रस के साथ देना। चैतन्यता लाने के लिए कस्तूरी और मधु के साथ घोटकर चटाना चाहिए। ताक़त के लिए केवल मधु या मलाई में घोटकर चाटना और ऊपर से उष्ण दुग्ध मिश्रीयुक्त पीना चाहिए। अन्य रोगों में रोगी की प्रकृति और रोगानुसार अनुपान द्वारा देना।

समय—सन्निपात में ३-३ घंटे पर, ताक़त के लिए प्रातःसायं अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग—छोटी से बड़ी अवस्था तक के रोगमात्र में इसका प्रयोग कर सकते हैं। विशेषकर-सन्निपात निमोनिया, इन्फ्लूएन्ज़ा, हिमाङ्गावस्था, नाड़ीक्षीणता, रोग निवृत्ति के बाद हुई निर्बलता पर उपयोगी है।

मरिचादि वटिका

कालीमिर्च १ तोला, छोटी पीपल १ तोला, अनार

का बकला १ तोला, बहेड़ा का बकला १ तोला, यवक्षार ६ माशा, गुड़ ८ तोला।

विधि—सब औषधियों का चूर्ण कर छान लेना तथा गुड़ मिलाकर जंगली बेर बराबर वटिका बनाकर रखे।

मात्रा—१ से ४ वटिका तक।

अनुपान—मधु, उष्ण जल या वटिका मुख में रखकर चूसें।

समय—दिन में तीन बार आवश्यकतानुसार।

उपयोग—पाँचों प्रकार की कास, स्वरभेद पर देना।

मन्थरज्वरारि वटिका

लौंग ५ तोला, तुलसीपत्र ताज़े ५ तोला।

विधि—प्रथम लौंग का फूल अलहदा करके कूट-छान लेना, फिर तुलसीपत्र के साथ पीसकर चने समान वटिका बनाकर छाया में सुखाकर रख लेना।

मात्रा—१ से ४ वटिका तक।

अनुपान—मधु अथवा लौंग का क्वाथ।

समय—दिन में पाँच बार तक आवश्यकतानुसार।

उपयोग—मन्थरज्वर, विषमज्वर, श्लेष्मज कास।

मुक्तापिष्टी

खूब सफ़ेद, पीलापन लिए, वज़नी, हलका, गोल, चिकना, चमकदार, मज़बूत, नमक के संसर्ग से चमक कम न हो ऐसा मोती व्यवहार में लाना चाहिए।

शोधनविधि—मोतियों को दोलायंत्र द्वारा २ पहर तक चूने के पानी में तथा एक पहर तक गोदुग्ध में औटाना। अथवा केवल जैत की पत्ती के रस में एक पहर तक औटा लेना, फिर पानी से धोकर रख लेना चाहिए।

पिष्टीविधि—इस प्रकार शुद्ध किये हुए मोतियों को कूट पीसकर कपड़े से छान रखना। इसको ७ दिन गुलाबजल में घोटकर सुखा ले।

मात्रा—२ चावल से १ रत्ती तक।

अनुपान—मधु, शर्बत बनफ़शा, गोदुग्ध।

समय—प्रातः-सायं आवश्यकतानुसार।

उपयोग—हृदय, फुफ्फुस और मस्तिष्क की कमज़ोरी, क्षय, कास, श्वास, जीर्णज्वर मन्दाग्नि, शूल आंत्रिक व्रण, नेत्ररोग, मूत्रविकार, पित्तविकार और अशक्तता पर।

मण्डूरभस्म

४-५ सौ वर्ष पुराने क़िलों के खँडहरों से निकला हुआ, वज़नदार, छिद्ररहित, काला तोड़ने में कड़ा और कड़ी मिट्टी के समान टूटनेवाला मण्डूर काम में लेना।

शोधनविधि—मंडूर के टुकड़ों को तेज़ अग्नि में तपा-तपाकर ७ बार गोमूत्र में, ७ बार त्रिफला क्वाथ में बुझा लेना चाहिए। अग्नि के काम में बहेड़े की लकड़ी का कोयला लेना ज़रूरी है।

भस्मविधि—इस प्रकार शुद्ध किये हुए मंडूर को कूट-कूटकर खूब बारीक कर ले। फिर त्रिफला के क्वाथ में घोटकर शराव संपुट द्वारा गजपुट में फूँक दे। इस प्रकार ३०-४० पुट देना चाहिए।

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक अवस्थानुसार।

अनुपान—मधु, त्रिफलाचूर्ण, पुनर्नवा का रस, शर्बत बनफ़्शा।

समय—प्रातः सायं।

उपयोग—उदरविकार, पुराना क़ब्ज़, पांडु, रक्ताल्पता, शोथ।

य.

यशदभस्म

काटने में राँगे से कठिन, सफ़ेद और चमकदार, गलाने में राँगे से कठिन, वज़नदार यशद (जस्ता) उत्तम होता है।

शोधनविधि—लोहे की करछुल में जस्ते को गला-गलाकर २१ बार बुझावे, यह तीव्र अग्नि देने और धौंकने से गलता है। बुझाने के लिए एक वर्तन में दूध भरकर वर्तन का मुँह चक्की के ऊपरी पाट से ढक देना। बुझानेवाले को शरीर बचाकर चक्की के छेद से जस्ते को गलाकर डालना चाहिए।

भस्मविधि—शुद्ध जस्ता १० तोला, शुद्ध पारद १० तोला, शुद्ध गंधक १० तोला। शुद्ध जस्ता को

तीव्र अग्नि द्वारा गलाकर पारद मिला देना। इस प्रकार लोहदंड द्वारा चलाने से जस्ते का चूर्ण हो जाता है। इस चूर्ण को नींबू के रस में १ पहर तक घोटकर जल से धो लेना, जब सूख जाय तब गंधक मिलाकर घोटना तथा कज्जली कर लेना चाहिए। इस कज्जली को शरावसंपुट में रखकर ५० कंडों की अग्नि में फूँक देना। इस प्रकार ३ पुट देने से भस्म काले रंग की वज़नी होती है।

मात्रा—आधी से १॥ रत्ती तक अवस्थानुसार।

अनुपान—मधु, मक्खन-मिश्री।

समय—प्रातः-सायं।

उपयोग—जीर्णज्वर, कास, श्वास, नेत्ररोग, वायु-विकार, निर्बलता पर उपयोगी है।

यवक्षार

अच्छे पके हुए जौ के बाल से नीचे जड़ तक के भाग को लेकर सुखा लें और जला दें। जलाने पर अच्छी प्रकार जल जाय, कच्चाई न रहे। इस राख को अठगुने पानी में किसी मिट्टी के पात्र में घोलकर रख दे। ६-६ घंटे बाद २-३ बार घोल दिया करें। २४ घंटे तक निथर जाने पर ऊपर का स्वच्छ पानी साफ़ कपड़े से छान ले। इस पानी को कढ़ाई में चढ़ाकर जलाना चाहिए। पानी के जल जाने पर नमक जैसा पदार्थ तैयार हो जायगा, इसे घोट-छानकर रख लेना, इसको यवक्षार कहते हैं।

मात्रा—१ से ४ रत्ती तक, अथवा २ से ४ माशे तक।

अनुपान—ताज़ा जल, मधु या पतले आसवादि के साथ।

समय—प्रातः-सायं, विशेषकर भोजनोपरान्त। अजीर्ण में खाली पेट पर देना चाहिए।

उपयोग—कास, कफ का रुककर आना या जकड़ जाना, इन्फ़्ल्यूएन्ज़ा, गुल्म, अश्मरी, अजीर्ण, पेशाब कम होना अथवा रुक जाना, यकृत्-प्लीहा की वृद्धि।

र.

रोहितकारिष्ट

लाल रोहिड़ा की छाल ५ सेर, पुराना गुड़ १० सेर धवई के फूल ४० तोला, पीपल, पिपरामूल, चव्य, चित्रक छाल, सोंठ प्रत्येक ३-३ तोला, छोटी इलायची के दाने, दालचीनी, पत्रज प्रत्येक ३-३ तोला, हरड़, वहेड़ा, आँवला प्रत्येक ३-३ तोल।।

विधि—रोहिड़ा की छाल को कूटकर १ मन पानी में क्वाथ करे। जब १० सेर पानी बाक़ी रहे तब छानकर गुड़ तथा अन्य ओषधियों का छना हुआ चूर्ण मिलाकर चिकने या चपड़ा पुते हुए घड़े में रख मुख मुद्रित करके ज़मीन में गाड़ दें। एक मास उपरान्त छानकर बोतलों में भर कार्क लगाकर रख दे।

मात्रा—३ माशे से १ ताले तक अवस्थानुसार।

अनुपान—अरिष्ट का सम भाग ताज़ा जल मिलाकर।

समय प्रातः-सायं भोजनोपरान्त।

उपयोग—यकृत् और प्लीहा के विकार, गुल्म, बवासीर, पांडु, शोथ, मन्दाग्नि, उदरविकार, अरुचि।

ल.

लवङ्गादि चूर्ण

लौंग, शुद्ध कपूर, छोटा इलायची के दाने, दालचीनी, नागकेसर, जायफल, खस, सोंठ, काला जीरा, काली अगर, वंशलोचन, जटामासी, नील कमल, छोटी पीपल, सफ़ेद चन्दन, तगर, नेत्रवाला, कंकोल—प्रत्येक १-१ तोला। मिश्री ६ तोला।

विधि—सब औषधियों को कूट-पीस कपड़े से छान शीशी में भरकर रख लेना चाहिए।

मात्रा ४ रत्ती से ८ रत्ती तक तथा १ से ३ माशे तक।

अनुपान—मधु अथवा माता के दूध में मिलाकर देना।

समय—प्रातः-सायं, आवश्यकतानुसार।

उपयोग—साधारण ज्वर, कास, तमकश्वास, अतिसार, अग्निमान्द्य, अरुचि, क्षय, बालकों का शोष, वमन, प्रमेह, प्रतिश्याय, आंत्रिक व्रण और अशक्तता पर उत्तम है।

लवङ्गादि वटिका

लौंग, कालीमिर्च, बहेड़े का बकला प्रत्येक १-१ तोला। पापड़ी कत्था ४ तोला, अनार का बकला ६ माशे। यवक्षार ३ माशे।

विधि—सब औषधियों को कूट-पीसकर छान लेना, फिर बबूल की छाल के क्वाथ से घोटकर चने प्रमाण वटिका बनाकर रख लेना चाहिए।

मात्रा—१ से ४ वटिका तक, आवश्यकतानुसार।

अनुपान—मधु अथवा मुँह में रखकर रस चूसना चाहिए।

समय—प्रातः-सायं, अथवा जिस समय खाँसी चलती हो।

उपयोग—पाँच प्रकार की कास, कफ का जम जाना, गले की खरखराहट, सामान्य ज्वर, प्रतिश्याय (ज़ुकाम), ज़ुकाम के अन्य विकार, बालकों की कुकर खाँसी।

लाक्षादि तैल

बेर की लाख ४ सेर, तिल्ली का तैल २ सेर, दही का पानी ८ सेर, सौंफ, हल्दी, देवदारु, मूर्वा की जड़, कूट, सँभालू के बीज, कुटकी, मुलहठी, रास्ना, नागौरी असगंध, नागरमोथा, लाल चन्दन प्रत्येक १-१ तोला।

विधि—प्रथम लाख का चूर्ण कर ३२ सेर पानी में क्वाथ करे। जब ८ सेर शेष रहे तब छानकर उसमें

तिल्ली का तैल, दही का पानी और सौंफ आदि १२ ओषधियों को कूटकर मोटी चलनी से छानकर पानी में भाँग के समान गाढ़ी सिल पर पीसकर इसकी लुगदी मिला दे। फिर मन्द अग्नि से पकावे। जब तैलमात्र शेष रहे तब उतारकर ठंडा होने पर कपड़े से छाने और बोतलों में भरकर रख ले।

उपयोग—इस तैल की मालिश करने से विषम-ज्वर, कास, श्वास, क्षय, कमर तथा पीठ का शूल, वायु और पित्त का प्रकोप, देह में दुर्गन्ध का आना, खुजली, बालकों का सूखा रोग, गर्भवती स्त्री के मालिश करने से गर्भ परिपुष्ट होता है।

व.

वसन्तकुसुमाकर रस

स्वर्णभस्म २ तोला, कान्तलौहभस्म ३ तोला, वंगभस्म ३ तोला, पारदभस्म ४ तोला, अभ्रकभस्म सहस्रपुटी ४ तोला, प्रवालपिष्टी ४ तोला, मुक्तापिष्टी ४ तोला।

विधि—सब ओषधियों को खरल में डालकर नीचे लिखे द्रव्यों की क्रमानुसार भावना देनी चाहिए। यद्यपि यह भावना ही लिखी है, तथापि इन चीज़ों के साथ यह रस घोटा जा सकता है।

गोदुग्ध गन्ने का रस, अडूसे का रस, लाख का क्वाथ, नेत्रवाला का क्वाथ, केले के कन्द का रस, केले के

फूल का रस, कमल के फूल का रस, चमेली के फूल का रस, गुलाब-जल। इनकी भावना देकर सुखाने के बाद रस से आठवाँ हिस्सा कस्तूरी मिलाकर घोट देना और शीशी में रख लेना चाहिए।

मात्रा—१ से ३ चावल तक। बड़ी आयुवालों के लिए १ से २ रत्ती तक।

अनुपान—मधु, दूध की मलाई, गुलक़न्द।

समय—प्रातःसायं।

उपयोग—सर्व प्रमेह विशेष कर मधुमेह, बहुमूत्र, हिस्टीरिया, पेशाब में सफ़ेदी अथवा पीब जाना, नपुंसकता, रोगनिवृत्ति के बाद हुई निर्बलता पर उपयोगी है।

वमनामृतवटी

शुद्ध गंधक, शुद्ध शिलाजीत, साबरशृंगभस्म, गोरोचन, कमलगट्टा, रुद्राक्ष, तवाखीर, मुलेठी, सुहागा चौकिया भुना हुआ सफ़ेद चन्दन का बुरादा प्रत्येक १-१ तोला लें।

विधि—सब औषधियों का चूर्ण कर छान ले। फिर बेल की जड़ के क्वाथ से एक पहर घोटकर रत्ती प्रमाण वटी बनावे और सुखाकर रख ले।

मात्रा—१ से ४ वटी तक।

अनुपान—मधु अथवा केवल शीतल जल।

समय—प्रातः-सायं अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग--कास, श्वास, हिचकी, तृषा, वमन।

वासावलेह

अडूसे के पत्र २ सेर, मिश्री १ सेर, गोघृत २० तोला, छोटा पीपल १६ तोला, छोटी इलायची के दाने १ तोला, दालचीनी १ तोला, पत्रज १ तोला नागकेसर १ तोला, मधु १ सेर।

विधि—अडूसे के पत्र का १६ सेर पानी में क्वाथ करे, शेष ४ सेर रहने पर छान ले। इस क्वाथ में मिश्री और घृत मिलाकर औटावे। जब गाढ़ा हो जाय तब पीपल आदि औषधियों का कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिलाकर नीचे उतार ले, पीछे ठंढा होने के बाद १ सेर मधु मिलाकर शीशी में रख ले।

मात्रा— ३ माशे से १ तोले तक।

अनुपान—काँच के पात्र या पत्थर की कुंडी में डालकर चाटना।

समय—प्रातः-सायं, आवश्यकतानुसार।

उपयोग—राजयक्ष्मा, कास, श्वास, रक्तपित्त, हिचकी, पार्श्वशूल, हृच्छूल और ज्वर पर।

वासाक्षार

विधि--अडूसे के पञ्चाङ्ग को सुखाकर जला ले इस राख को अठगुने जल में घोलकर निथार ले तथा छान ले। इस छने हुए जल को कढ़ाई में डालकर पका

लेने पर नीचे एक नमक-जैसा पदार्थ बैठ जाता है, इसे घोटकर रख लेना, यही वासाक्षार है।

मात्रा—१ रत्ती से ४ रत्ती, तथा १ से २ माशे तक।

अनुपान—मधु अथवा जल।

समय—प्रातः-सायं अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग—कफ को पतलाकर निकालनेवाला, कास, श्वास, निमोनिया, पाचनदोष, यकृत् प्लीहा के विकार।

विजयातैल

भाँग का रस अथवा चौगुने जल में क्वाथ करे। जब एक चौथाई शेष रहे तब छान ले। रस या क्वाथ ४ सेर, तिल्ली का तैल १ सेर।

विधि—दोनों चीज़ों को कढ़ाई में डालकर मंदाग्नि से पकाना, जब तैलमात्र शेष रहे तब छानकर बोतलों में भरकर रख लेना चाहिए।

उपयोग—नींद लाने के लिए रात्रि को रोगी के शिर और पैर के तलुओं में मालिश करने से दो घंटे बाद घोर निद्रा आती है।

बृहत्कस्तूरीभैरव रस

कस्तूरी, शुद्ध कपूर, अभ्रकभस्म, स्वर्णभस्म, रौप्य-भस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म, मुक्ताभस्म, प्रवालभस्म, गोदन्तीहरतालभस्म, धवई के फूल, कौंच के बीज,

बायबिडंग, पाढ़, नागर मोथा, सोंठ खस, आँवला प्रत्येक ६-६ माशा लेना ।

विधि—धवई के फूल से लेकर आँवला तक सब औषधियों का चूर्ण कर छान रखे, और भस्मादि सब एकत्रित कर मदार के पत्तों के रस से एक भावना देकर घोट रखे ।

मात्रा—१ से ५ रत्ती तक अवस्थानुसार ।

अनुपान—तुलसीपत्ररस और मधु, आर्द्रकरस अथवा पान के रस से ।

समय—प्रातः-सायं अथवा आवश्यकतानुसार ।

उपयोग—सम्पूर्ण ज्वर, प्लेग, निमोनिया, इन्फ्लुएन्ज़ा, मन्थरज्वर, ज्वरातिसार, आमातिसार, ग्रहणी, मन्दाग्नि, विसूचिका, क्षय, प्रमेह, निर्बलता, हिमाङ्गावस्था, नाड़ी शैथिल्य पर ।

श.

शुक्तिभस्म

वज़न में हलकी, जिसके बीच में मोती की उपज के चिह्न हों, चमकीलेपन में नीले, और हरे रंग की भड़क न हो, सफ़ेद तथा बड़ी हो, इस प्रकार की सीप उत्तम है ।

शोधनविधि—ऐसी मोती की सीप के टुकड़ों को पोटली में बाँधकर काग़ज़ी नींबू के रस में या काँजी में १ पहर तक दोलायंत्र से पकावे ।

भस्मविधि—शुद्ध की हुई सीप के टुकड़ों के

ऊपर नीचे घीकुवार का गूदा रखकर शरावसंपुट में कपड़मिट्टी से बन्द करके गजपुट में फूँक दे। इस प्रकार १-२ पुट देकर फूँकने से भस्म तैयार होती है। भस्म को ४ ५ वार गुलाब जल में घोटकर सुखा ले और कपड़े से छानकर शीशी में भर रखे।

मात्रा—आधी से २ रत्ती तक।

अनुपान—मधु, उदर रोगों में नींबू के रस से, हृद्रोग में गुलकन्द के साथ।

समय—प्रातः सायं आवश्यकतानुसार

उपयोग—यकृत्, प्लीहा, शूल, हृद्रोग, श्वास, उदर-विकार, स्त्रियों का ऋतुदोष।

शंखभस्म

सुन्दर, सफ़ेद, चमकदार, दोनों ओर से पतला, बीच में गोल, वज़नदार, ऐसा शंख उत्तम होता है।

शोधनविधि—काँजी या नींबू के रस में शंख के टुकड़ों को कपड़े में बाँधकर दोलायंत्र से एक पहर तक पकाने से शुद्धि होती है।

भस्मविधि—शुद्ध शंख के टुकड़ों के ऊपर नीचे घीकुवार का गूदा रख के शरावसंपुट में कपड़मिट्टी से मुँह बन्द कर गजपुट में फूँकने से भस्म हो जाती है। इस प्रकार २-३ पुट देनी पड़ती है।

मात्रा—आधी रत्ती से २ रत्ती तक, अवस्था-नुसार।

अनुपान—उदर रोगों पर नींबू का रस या उष्ण जल, यकृत्, प्लीहा में त्रिफलाचूर्ण के साथ, साधारणतया मधु।

समय—प्रातः-सायं आवश्यकतानुसार।

उपयोग—मन्दाग्नि, अपाचन, शूल, संग्रहणी, अम्लपित्त, गुल्म, यकृत्, प्लीहा पर उपयोगी है।

श्वासकुठार रस

शुद्ध, पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध मैनशिल, चौकिया सुहागा भुना हुआ, छोटी पीपल, सोंठ, प्रत्येक १-१ तोला, तथा कालीमिर्च २ तोला।

विधि—प्रथम पारद और गंधक को घोटकर कज्जली कर ले, फिर सब औषधियों को कूटकर कपड़ छानकर मिला रखे और आर्द्रक रस की ७ भावना देकर १ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रख लेना चाहिए।

मात्रा—१ से ४ वटी तक अवस्थानुसार।

अनुपान—मधु, आर्द्रकरस और पान का रस।

समय—प्रातः-सायं अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग—श्वास के लिए विशेषरूप से प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त निमोनिया, इन्फ्लयूएन्ज़ा, विसर्प, गले की गाँठों की सूजन तथा दर्द और सूजनवाले अन्य रोगों में भी उपयोगी है।

शृंग्यादि चूर्ण

काकड़ासिंगी, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल,

बड़ी हरड़ का छिलका, बहेड़े का छिलका, आँवला, भारंगी, बड़ी कटाई, पोहकरमूल, समुद्र नमक, काला नमक, सेंधा नमक, विड़ नमक, सांभर नमक, यवक्षार प्रत्येक १-१ तोला लेना चाहिए।

विधि—सब औषधियों को कूट कपड़छान कर रख लेना।

मात्रा—१ से ३ माशे तक।

अनुपान—मधु अथवा जल।

समय—दिन में तीन बार, अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग—कास, श्वास, अधिक कफ जाना अथवा कफ का रुककर निकलना।

स

समीरपन्नग रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध वत्सनाभ, सोंठ, कालामिर्च, पीपल प्रत्येक १-१ तोला लेना चाहिए।

विधि—प्रथम पारद और गंधक की कज्जली कर ले, फिर अन्य औषधियों का कपड़छान किया हुआ चूर्ण और कज्जली को एकत्रित कर भृङ्गराज के रस की ७ भावना देकर उड़द समान वटी बनाकर रख ले।

मात्रा—१ से २ वटी तक।

अनुपान—मधु, घृत, आर्द्रकरस।

समय—प्रातःसायं आवश्यकतानुसार।

उपयोग—कास, श्वास, कफज तथा वातज रोगों पर।

साबरशृङ्गभस्म

विधि—साबर सींग के छोटे-छोटे टुकड़े करके मदार के दूध में तीन दिन तक भिगो रखे, बाद में निकालकर मदार के पत्तों में लपेट शरावसंपुट में कपड़मिट्टी से बन्द कर गजपुट में फूँक दे। इस प्रकार १-२ पुट देने से सफ़ेद रंग की भस्म तैयार हो जायगी। यदि काली रह जाय तो उसको पुनः मदार के दूध में घोटकर टिकड़ी बनाकर सुखा ले। इन टिकड़ियों को मदार के पत्तों में लपेटकर गजपुट में फूँक लेना चाहिए। इसको कूटकर कपड़छान करे और शीशी में भरकर रख ले।

मात्रा—२ चावल से २ रत्ती तक अवस्थानुसार।

अनुपान—मधु, उष्णजल, घृत, मलाई।

समय—प्रातःसायं अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग—मन्थरज्वर, निमोनिया, कास, श्वास, हिचकी, पार्श्वशूल, कटिशूल, हृच्छूल, यकृत्, शोथ, फुफ्फुस-विकार को नष्ट कर शरीर में स्फूर्ति लाता है।

सितोपलादि चूर्ण

वंशलोचन २ तोला, छोटी पीपल १ तोला, छोटी इलायची के दाने ६ माशा, दालचीनी ३ माशा. मिश्री ४ तोला।

विधि—सब ओषधियों को कूट कपड़े से छान कर शीशी में भर रखे।

मात्रा—४ रत्ती से ३० रत्ती तक अथवा २ से ६ माशे तक।

अनुपान—मधु, शर्बत बनफ़शा।

समय—प्रातः-सायं अथवा दिन में २ से ४ वार तक।

उपयोग—कफज तथा पित्तज कास, प्रतिश्याय, सामान्यज्वर, क्षयरोग की अरुचि, हाथ-पैरों की दाह पर देवे।

स्वर्णवसन्तमालिनी

सोने के वरक़ १ तोला, शुद्ध मोती २ तोला, शुद्ध हिंगुल ३ तोला, कालीमिर्च ४ तोला, यशद्भस्म ८ तोला।

विधि—सोने के वरक़ों को मोती के साथ १ पहर तक घोटे। हिंगुल और कालीमिर्च चूर्ण के साथ बारीक घोटकर यशद्भस्म मिला दे, तथा ३ माशे गाय के मक्खन को डालकर सबको चिकना कर दे। इसको काग़ज़ी नींबू के रस से यहाँ तक घोटे कि मक्खन की चिकनाहट नष्ट हो जाय, तदुपरान्त सुखाकर रख ले।

मात्रा—२ से ६ चावल तथा १ से ३ रत्ती तक अवस्थानुसार।

अनुपान—मधु, बकरी का दूध। मधु और पीपल चूर्ण के साथ।

समय--प्रातः-सायं ।

उपयोग--जीर्णज्वर, क्षय, कास, मन्दाग्नि, प्रमेह, प्रदर, पांडु, निर्बलतानाशक है ।

स्वर्णमाक्षिक भस्म

चिकना और चमकदार, पीलापन विशेष, कसौटी पर घिसने से सोने के समान रंगत दे, वज़नदार उत्तम होती है ।

शोधनविधि--सोनामाखी के टुकड़ों को बारीक करके पोटली में बाँध दोलायंत्र द्वारा केले के कन्द के रस में १ पहर पका लेने से शुद्ध हो जाती है ।

भस्मविधि--इस प्रकार शुद्ध की गई सोनामाखी को खरल में पीसकर नींबू के रस में घोटकर टिकिया बनाना और सुखाकर शरावसंपुट में रखकर गजपुट में फूँकना चाहिए। इस प्रकार ११ पुट देने से लाल, कुछ पीलापन लिये हुए मुलायम भस्म तैयार होती है ।

मात्रा--आधी रत्ती से दो रत्ती तक अवस्थानुसार ।

अनुपान--मधु, शर्बत बनफ्शा अथवा रोगानुसार ।

समय--प्रातः-सायं, आवश्यकतानुसार ।

उपयोग--ज्वर, मन्थरज्वर, गलौघ, अस्थिविकार, अनिद्रा (नींद न आना), मस्तिष्क के विकार,

शिर तथा नेत्र के रोग, हृदय की कमज़ोरी, निर्बलता-नाशक है।

संजीवनी वटिका

बायबिडंग, सोंठ, छोटी पीपल, बड़ी हरड़ का छिलका, आँवले का छिलका, बहेड़े का छिलका, मीठी बच, अमृतासत्व, शुद्ध भिलावाँ, शुद्ध वत्सनाभ, प्रत्येक १-१ तोला लेना चाहिए।

विधि—सब ओषधियों को कूटकर कपड़े से छान लेना। गोमूत्र की एक भावना देकर खरल में खूब घुटाई करना। महीन और चिकनी होने के बाद चने बराबर गोलियां बनाकर सुखा रखें। सूखने पर गोलियाँ कुछ छोटी हो जाती हैं।

मात्रा—१ वर्ष से ५ वर्ष तक के बालकों को चौथाई वटी। ६ से १२ वर्ष तक के बालकों को आधी से १ वटी तक। इससे अधिक आयुवालों के लिए १ से ४ वटी तक अवस्थानुसार।

अनुपान—मधु, आर्द्रकरस, किंचिदुष्णजल या ताज़ा जल अथवा रोगानुसार।

समय—प्रातः-सायं अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग—साधारण ज्वर, गुड़िकाज्वर, मन्थरज्वर, अजीर्ण और अजीर्ण से उत्पन्न ज्वर, पुराना अतिसार, जी मचलाना, वमन, उदराध्मान, मलावरोध, उदरशूल, विषूचिका (हैज़ा), वसंतरोग, इन्फ्लूएन्ज़ा, बच्चों की सर्दी।

ह.

हिंग्वष्टक चूर्ण

सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अजवायन, ज़ीरा, सफ़ेद, काला ज़ीरा, सेंधा नमक, हींग प्रत्येक १-१ तोला लेना।

विधि—सफ़ेद ज़ीरा और हींग दोनों को पहिले घी में भून ले, फिर सब ओषधियों को कूट-छान रखें।

मात्रा—१ से ६ माशे तक, अवस्थानुसार।

अनुपान—भोजन के प्रथम ग्रास में घी या उष्ण जल से।

समय—प्रातः-सायं, भोजन के समय या भोजन की इच्छा होने पर।

उपयोग—अग्निमान्द्य, अजीर्ण, आध्मान, उदर-शूल आदि उदरविकार, अरुचि के लिए अधिक व्यवहृत है।

त्र.

त्रिभुवनकीर्ति रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभ, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, पिपरामूल, चौकिया सुहागा भुना हुआ प्रत्येक १-१ तोला लेना चाहिए।

विधि—सब ओषधियों को कूट-पीसकर कपड़े से छान ले। इसमें तुलसीपत्ररस, आर्द्रकरस और धतूरपत्ररस की १-१ भावना देकर घोट ले। फिर उड़द समान वटिका बनाकर सुखाकर रख लें।

मात्रा—१ से ६ वटिका तक अवस्थानुसार।

अनुपान—मधु, तुलसीपत्ररस, मिश्री की चाशनी।

समय—प्रात-सायं या ज्वर उतरने तक ३-३ घंटे बाद खिलाना, किन्तु २४ वटिका से अधिक सेवन नहीं कराना।

उपयोग—निमोनिया, पित्तज्वर, शरीर पर चकत्ते पड़ना और हर प्रकार के तीव्रज्वर पर उपयोगी है। इसके अतिरिक्त विसर्प, गले की सूजन और पीड़ा तथा सूजन-संबन्धी अन्यान्य रोगों में भी गुणकारी है।

त्रिफलाचूर्ण

बड़ी हरड़ का छिलका, वहेड़े का छिलका, आँवले का छिलका प्रत्येक २॥-२॥ तोला ले।

विधि—प्रथम प्रत्येक ओषधि को अलग-अलग कूटकर कपड़छान करके रखें। फिर तीनों को समान भाग लेकर एकत्रित करके काजल के समान घोटकर रखें।

मात्रा—३ माशे से १ तोले तक अवस्थानुसार।

अनुपान—मधु, मन्दाग्नि में सेंधा नमक मिलाकर ताज़े जल के साथ। कोष्ठबद्ध में चूर्ण से दूना गुलक़न्द मिलाकर देवे। प्रमेह और नेत्ररोगों में रात्रि को गोदुग्ध के साथ। उदर-विकारों पर उष्ण जल के साथ।

समय—प्रातः-सायं, रात्रि में सोते समय, आवश्यकतानुसार।

उपयोग--यह चूर्ण आमाशय को नियमित रखता है, अतएव मन्दाग्नि, पुराना अतिसार, हिचकी, उदर तथा शिरःशूल में अधिक व्यवहृत होता है। आमाशय से निकलनेवाले रक्त (खून की वमन) को रोकने के लिए उत्तम है तथा नेत्ररागों के लिए प्रसिद्ध है। विषमज्वर, कास, यकृत्-प्लीहा, प्रमेह, शोथ पर उपयोगी है।

औषधों में आये हुए रस-विषादि द्रव्यों का शोधन-विधान

पारद (पारा)

पारद ४० तोला, घीकुवार का गूदा २० तोला, त्रिफलाक्काथ २० तोला, भटकटैया का क्काथ २० तोला, चितावर का चूर्ण १० तोला, पीली सरसों का चूर्ण १० तोला।

विधि—सबको खरल में डालकर ३-४ दिन घोटना और सूखने पर जल से धोकर सूखे कपड़े की दुगुनी तह में ३-४ बार छान लेना चाहिए। यह सब प्रकार के पारद की विशेष शुद्धि है।

गन्धक

आँवलासार गंधक १० तोला, घी १० तोला, दूध ५ सेर।

विधि—लोहे के पात्र में घी तपाकर गरम कर लेना चाहिए। जब वह खूब गरम हो जाय तब पिसा हुआ

गंधक पात्र में डालना चाहिए। गंधक तपकर घी के समान हो जाता है। इस प्रकार पतला हो जाने पर इसे ठंडे दूध में डाल देना चाहिए। गंधक दूध में ठंडा होकर जम जाता है। इस प्रकार ३ बार गलाकर बुझाने से गंधक शुद्ध हो जाता है।

हिंगुल (शिगरफ़)

शिगरफ़ को भेड़ी के दूध अथवा नींबू के रस में खरल करके सुखा लेने से वह शुद्ध हो जाता है।

गोदन्ती हरताल

गोदन्ती हरताल को कपड़े की पोटली में बाँधकर नींबू के रस में १ पहर तक दोलायंत्र द्वारा पकाने से वह शुद्ध होता है।

मैनसिल

मैनसिल के टुकड़ों को तोड़कर आर्द्रकरस अथवा अगस्त के पत्तों के रस में घोटकर सुखाने से वह शुद्ध हो जाता है।

लौह

रेती या चुंवक का लौह उत्तम होता है। ऐसे लौह के पतले पत्र करा ले अथवा रेतकर चूर्ण करा लेना। इस चूर्ण (या पत्रों) को अग्नि में तपा-तपाकर त्रिफला-क्वाथ और गोमूत्र में ११-११ वार बुझा लें तो लौह शुद्ध हो जाता है।

शिलाजीत

शिलाजीत को त्रिफला-क्वाथ में घोलकर धूप में रख देना। जैसे-जैसे सूखकर उस पर पपड़ी पड़ती जाय वैसे ही वैसे उस पपड़ी (मलाई) को उतारकर सुखा लें, इसी को काम में लेना ठीक है।

कपूर

देशी कपूर को टुकड़े करके तवे पर रखना, ऊपर से एक कटोरा औंधा देना और कटोरे की संधि को उड़द के आटे अथवा चिकनी मिट्टी से बन्द करके सुखा लेना चाहिए। इसे अग्नि पर चढ़ा दे। थोड़े समय में कपूर उड़कर औंधे हुए कटोरे की तली में लग जायगा। इसे निकालकर रख लें। बस यही शुद्ध कपूर है, यह काम में लेना चाहिए।

वत्सनाभ

यह दो प्रकार का होता है, सफ़ेद और काला। ये दोनों काम में लाये जाते हैं। इसे सिंगिया, बच्छनाग, विष और मीठा तेलिया आदि कहते हैं।

वत्सनाभ को गोमूत्र में ७ दिन तक भिगोकर रखें। गोमूत्र नित्य ताज़ा डालना चाहिए। जब यह इतना मुलायम हो जाय कि सुई खोंसने से पार हो जाय, तब गर्म जल से धोकर टुकड़े करके सुखा ले, और कूट-छानकर रख ले। इस प्रकार शोधित वत्सनाभ को काम में ले।

जमालगोटा

जमालगोटे के बीज काम में लिये जाते हैं। ये गोल, लंबे और बगैर नोक के होते हैं। इनका तैल हानिकर समझा जाता है। जमालगोटे के बीजों को गोमूत्र में दोलायंत्र द्वारा ४ पहर पकाकर इनके बीच की जिभी चाकू से निकाल सुखा लेना चाहिए। सूख जाने पर इनको जल में पीस ले। इस पिट्ठी को किसी मिट्टी के खपरे में लेप कर सुखा दे। सूखने के बाद पुनः जल में पीसकर नये मिट्टी के खपरे पर लेप करके सुखा ले। इस प्रकार ४-५ बार करने से इनका हानिकारक तैल मिट्टी के खपरे में सोख जाता है। सूख जाने के बाद इन बीजों के चूर्ण को काम में ले।

धतूरबीज

धतूरे के बीज दो दिन तक गोमूत्र में भिगोकर सुखा लेने से शुद्ध होते हैं। अथवा गोदुग्ध में उबालकर उष्ण जल से धोकर सुखा लेने से शुद्ध हो जाते हैं।

भिलावाँ

भिलावाँ एक ज़हरीली वस्तु है। इसका धुआँ या तैल लगने से शरीर सूज जाता है। इसके तैल में विष अधिक रहता है। भिलावाँ को पोटली में बाँधकर भैंस के गोबर को पतला कर इसमें दोलायंत्र द्वारा ४

पहर तक उबाल ले, और उष्ण जल से धोकर काम में ले। अथवा गरम बालू में या गरम मिट्टी के खपरे में डाल देने से गरमी पाकर तैलभाग निकल जाने पर इसे काम में लेना चाहिए। किन्तु यह क्रिया करते समय धुआँ से शरीर को बचाते रहना चाहिए।

अफीम

अफीम के टुकड़े करके अदरक के रस में घोल दे। पश्चात् कपड़े से छानकर इस रस को धूप में सुखाकर रख ले। इस प्रकार शुद्ध की हुई अफीम को काम में ले।

यंत्र-परिचय

दोलायंत्र

जिस ओषधि को दोलायंत्र में शुद्ध करना हो उसको कपड़े में बाँधकर पोटली बनावे और मिट्टी की हाँडी का आधा भाग ओषधियों के क्वाथ या गोमूत्र आदि पतले पदार्थ से पूर्ण करे तथा हाँडी के मुँह पर लम्बी लकड़ी रख उसमें वह पोटली बाँधकर हाँडी में लटका दे। फिर हाँडी को चूल्हे पर चढ़ाकर नीचे अग्नि जलावे। इसको दोलायंत्र कहते हैं।

शरावसम्पुट

मिट्टी के दो गहरे सकोरे या चौड़े मुँहवाली हाँडी लेना। इसमें नीचे घीकुँवार का गूदा बीच में शंख आदि भस्म बनानेवाली ओषधि रख ऊपर से घीकुँवार

का गूदा भरकर सकोरे या हाँडी का मुँह दूसरे सकोरे से ढककर संधि-स्थान (जोड़ की जगह) को कपड़-मिट्टी से बन्द कर सुखा ले। सूखने पर गजपुट में रखकर कंडों की अग्नि से फूँकना। इसे शरावसंपुट कहते हैं।

गजपुट

ज़मीन में एक गज़ गहरा, एक गज़ लम्बा और एक गज़ चौड़ा गढ़ा खोदे। इसकी मिट्टी दूर कर इस गढ़े में औषधि के शरावसम्पुट को रख ऊपर तक कंडे भरकर अग्नि जलाना चाहिए। इसी गढ़े का नाम गजपुट है।

मन्थरज्वर (आन्त्रिकज्वर) का निदान

Typhoid fever or Enteric fever,

नित्यमध्वपरिश्रान्ता उपवासविकर्शिताः।
ये वसन्ति च दुर्गन्धसंकुलावसथादिषु ॥ १ ॥
तेषां प्रायेण मलिनाहारपानोपयोगतः।
सर्वर्तुष्वपरं प्रायः ग्रीष्मवर्षाशरत्सु वै ॥ २ ॥
आन्त्रिकाख्यो ज्वरो घोरः दृश्यते कृच्छ्रलक्षणः।
तस्य जीवाणवो मूलं दण्डाकारा विशेषतः ॥ ३ ॥
प्लीह्नि मूत्राशये पित्ताशये रक्तेऽन्त्रजे व्रणे।
पिडिकासु तथा स्वेदे विशि चापि कृतालयाः ॥ ४ ॥
विशिष्टं कारणं प्राप्य संक्रामन्ति नरान्नरम्।
विण्मूत्रस्वेदजैर्दोषैराहारद्रव्यदूषणात् ॥ ५ ॥

कोपयन्तः रसं रक्तं दोषांश्चाप्यान्त्रमाश्रिताः ।
कुर्वन्ति चरमं भागं क्षुद्रान्त्राणां शनैःशनैः ॥ ६ ॥
ततोऽन्त्रक्षतसंवृद्धौ यदा रक्तस्य निर्गमः ।
भिन्नान्त्रता तदाऽसाध्यो भवत्येष विनिश्चयः ॥ ७ ॥

प्राग्रूपम्

सादः शिरसि च पीडा विड्बन्धश्चारुचिस्ततोऽप्यरतिः ।
सप्ताह इति ज्ञेयं प्रागरूपं त्वान्त्रिकज्वरस्यैतत् ॥ ८ ॥

रूपम्

अष्टमे दिवसे प्राप्ते ज्वरस्तीव्रतरो भवेत् ।
सन्ध्ययोश्च ज्वरः प्रायः क्रमारोहेण लक्ष्यते ॥ ९ ॥
पिडिका मौक्तिकाकाराः प्लीहश्चाप्यभिवर्धनम् ।
उद्भूयोद्भूय लीयंते पिडिका मौक्तिकैः समाः ॥ १० ॥
जायते बद्धकोष्ठत्वं क्वचित्प्लीहाभिवर्धते ।
स्पर्शासहत्वं कोष्ठस्य क्षतान्त्रत्वस्य लक्षणम् ॥ ११ ॥
पञ्चाहात् परतः प्रायः क्वचिन्नैव चिरेण वा ।
चणमुद्गादियूषाभं साध्मानमतिसार्यते ॥ १२ ॥
अथ द्वितीये सप्ताहे ज्वरः वृद्धोऽवतिष्ठते ।
तदा प्रलाप आक्षेपः कासस्तन्द्रा प्रमीलकः ॥ १३ ॥
दौर्बल्यं मुखशोषश्चारत्याध्मानौ विशेषतः ।
जिह्वा स्याद्रक्तपर्यन्ता मध्ये म्लाना च कर्कशा ॥ १४ ॥
स्फुटिताधिकश्च सन्तापः धमनी नातिचञ्चला ।
सान्निपातिकलिङ्गानामन्येषाञ्चापि दर्शनम् ॥ १५ ॥

अथ तृतीये सप्ताहे प्राप्ते दोषाः पचन्ति वै ।
ज्वरः सोपद्रवगणः क्रमेणैवावरोहति ॥ १६ ॥
गते तृतीये सप्ताहे ज्वरः प्रायो विमुञ्चति ।
इयं साधारणी प्रोक्ता मर्यादाऽस्य ज्वरस्य वै ॥ १७ ॥
यदा वैषम्यमाप्नोति तदा सा द्विगुणा भवेत् ।
कदाचित्त्रिगुणा दृष्टा जायन्तेऽन्येऽप्युपद्रवाः ॥ १८ ॥
मिथ्योपचारादान्त्रेषु यदा यक्ष्मोपजायते ।
आक्रम्येते फुफ्फुसौ च जायतेऽन्येऽप्युपद्रवाः ।
आन्त्रयक्ष्माभिधो रोगस्तदासाध्यो भवत्यसौ ॥ १९ ॥

नोट—यह 'आन्त्रिकज्वर-निदान' संस्कृत जाननेवाले सज्जनों की सुविधा के लिए संकलित किया गया है, जो कि पंजाब-संस्कृत-पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर द्वारा प्रकाशित माधवनिदान के परिशिष्ट निदान पृष्ठ ३१५ से उद्धृत है ।

—लेखक

समाप्त

ग्रन्थ पर प्राप्त हुई सम्मतियाँ

अखिल भारतवर्षीय १७ वें वैद्य-सम्मेलन के सभापति आयुर्वेदपञ्चानन पंडित जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल भिषग्मणि, राजवैद्य, मेम्बर इन्डियन मेडीसन बोर्ड आफ यू० पी० लिखते हैं—

"वैद्य-विशारद श्रीयुक्त पं० हरिवल्लभजी सिलाकारी-लिखित 'मन्थरज्वर-चिकित्सा' सम्बन्धी निबन्ध मैंने जहाँ तहाँ देखा। निबन्ध का ढंग अच्छा, वर्णन-शैली रोचक, विवरण सप्रमाण और विचार प्रगल्भ हैं। इसके अनुशीलन से मन्थरज्वरसम्बन्धी सभी बातों की जानकारी अच्छी तरह हो सकती है। आप इसके लिखने में सफल हुए हैं और आशा है, इसके प्रकाशित होने से वैद्य, वैद्यक, विद्यार्थी और सर्वसाधारण का अच्छा उपकार हो सकेगा।"

× × ×

कविराज धर्मानन्दजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, प्रोफेसर, आयुर्वेदिक कालेज गुरुकुल काँगड़ी लिखते हैं—

"कविराज पं० हरिवल्लभजी सिलाकारी द्वारा लिखित 'मन्थरज्वर-चिकित्सा'-विषयक निबन्ध देखने को मिला। यह एक उत्तम संकलन है। इसकी चिकित्सा का ढंग बहुत अच्छा और नवीन ढंग को लिये हुए लिखा गया है। लेखक महोदय खुद भी इस विषय के विशेषज्ञ हैं। अतः पुस्तक प्रत्येक वैद्य तथा विद्यार्थी के लिए अधिक उपादेय है।"

× × ×

कविराज पं० लक्ष्मीशंकरजी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, ए० एम० एस०, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, भिषग्रत्न, वैद्यभूषण, प्रिन्सिपल—एम० एस० आयुर्वेद कालेज दिल्ली लिखते हैं—

"कविराज पं० हरिवल्लभ मिलाकारीजी शास्त्री सागर-निवासी द्वारा लिखित "मन्थरज्वर-चिकित्सा" ग्रन्थ देखा जो कि अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण लेख है, और चिकित्साक्रम भी भली प्रकार लिखा गया है। आशा है कि इस प्रकार की पुस्तकों से आयुर्वेदसंसार को अवश्य लाभ होगा।"

× × ×

श्रीमान् दयानिधि स्वामीजी आयुर्वेदाचार्य, गोल्ड मेडेलिस्ट, आनरेरी मजिस्ट्रेट, प्रधान चिकित्सक—श्री १०८ बाबा कालीकमलीवाले का आयुर्वेद-विद्यालय और औषधालय, हृषीकेश लिखते हैं—

"कविराज हरिवल्लभजी मिलाकारी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य-कृत "मन्थरज्वर-चिकित्सा" नामक पुस्तक मैंने देखी है। यह पुस्तक बहुत परिश्रम और अनुसन्धान के साथ लिखी गई है। आयुर्वेद-विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। लेखन-शैली परिमार्जित है।"

× × ×

कविराज डॉ० धर्मानन्दजी रसायनाचार्य (मितरा-बंगाल) आयुर्वेदालंकार (गुरुकुल वि० वि० काँगड़ी) चिकित्सकरत्न, (बम्बई) सदस्य—पौर्वात्य ओषधि अन्वेषक संघ (लन्दन), प्रधान सदस्य—अखिल भारतीय आयुर्वेद-सम्मेलन, भू० पू० प्रधान—वैद्य-सभा, देहरादून, संपादक—"देहरा-समाचार" लिखते हैं—

"कविराज श्री पं० हरिवल्लभजी मिलाकारी शास्त्री-प्रणीत "मन्थरज्वर-चिकित्सा" नामक ग्रन्थ की पाण्डुलिपि को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। ग्रन्थ वस्तुतः परिश्रमपूर्वक लिखा गया है, एवम् संग्राह्य है। जब कि हिन्दी-साहित्य में चिकित्सा-सम्बन्धी विशिष्ट कोटि के ग्रन्थों का सर्वथा अभाव-सा है ; ऐसे

समय इस प्रकार लिखी गई पुस्तकों का प्रकाशित होना अवश्य उपयोगी होगा।"

× × ×

भिषग्रत्न कविराज पं० श्री उद्धवानन्दजी मैठाणी आयुर्वेद-शास्त्री, एल० ए० एम० एस०, अध्यक्ष—श्री रामकृष्ण ललित औषधालय, मंसूरी (देहरादून), लिखते हैं—

"कविराज पण्डित श्री हरिवल्लभ सिलाकारी शास्त्री, सागरनिवासी द्वारा लिखित "मन्थरज्वर-चिकित्सा"-विषयक ग्रन्थ देखा जिससे यह धारणा होती है कि ऐसे जटिल रोग की क्रमानुगत चिकित्सा का विवरण एकमात्र लिपिबद्ध ही नहीं अपितु वैद्यराज महोदय का आनुभविक ज्ञान की वास्तविक प्रतिमूर्ति है। आर्षग्रन्थों की शैली सूत्ररूप में होने से कुशाग्र-बुद्धि विद्वान् भी अकुला उठते हैं, साधारण की तो गति ही कठिन है। अतः यह पुस्तक संसार की नवीन धरणी को रखती हुई आयुर्वेद का सर्वसाधारण में प्रचार कर उभयपक्ष की प्रीति-भाजन होगी, यह दृढ धारणा है।"

× × ×

सीताराम जी चतुर्वेदी "हृदय" एम्० ए० एल-एल० बी०, बी० टी०, विशारद, संपादक—सनातनधर्म, हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी, लिखते हैं—

"हरिद्वार में आकर मुझे पण्डित हरिवल्लभ सिलाकारीजी वैद्यरत्न, आयुर्वेदाचार्य, की लिखी हुई "मन्थरज्वर-चिकित्सा" नामक पुस्तक देखने को मिली। योरोप में डॉक्टर लोगों ने विभिन्न रोगों पर अलग-अलग पुस्तक-पुस्तिकाएँ लिख-कर जनसमुदाय में प्रचारित की हैं कि जिससे लोग आनेवाले रोगों से सावधान हो जायँ या आ जाने पर उससे बच जायँ। भारतवर्ष की आयुर्वेदिक चिकित्सा अत्यन्त प्राचीन और गुणकारी

है, किन्तु अब लोगों की आस्था उस पर से हटती जा रही है, उसका कारण यह है कि हम जनसमुदाय में उसके प्रचार के लिए कुछ नहीं कर रहे हैं।

ऐसी दशा में सिलाकारीजी का यह उद्योग परम प्रशंसनीय है। बिलकुल वैज्ञानिक ढङ्ग पर आपने यह पुस्तक लिखी है कि कोई भी हिन्दी अक्षर पढ़ सकनेवाला उक्त ज्वर को पहचान सकता है और उसकी समुचित चिकित्सा कर सकता है। मैं सभी वैद्यों से और जनता से साग्रह अनुरोध करता हूँ कि वे ऐसी पुस्तकों का आदर और प्रचार करें।"

× × ×

पण्डित गोविन्दप्रसादजी शर्मा बी० ए०, एल-एल० बी०, विज्ञानरत्न, मंत्री—मध्यप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, कटनी, लिखते हैं—

"मैंने कविराज पं० हरिवल्लभजी सिलाकारी द्वारा निर्मित पुस्तक "मन्थरज्वर-चिकित्सा" के पढ़ने का लाभ उठाया है। सिलाकारीजी मन्थरज्वर के विशेष तथा अनुभवी चिकित्सक हैं और उन्होंने अपने सारे अनुभव इस पुस्तक में बड़ी ही सुन्दर रीति से लिपिबद्ध कर दिये हैं। पुस्तक प्रत्येक गृहस्थ के रखने और मनन करने योग्य है। मैं आशा करता हूँ कि इस पुस्तक का उचित आदर और प्रचार होगा। ऐसी सांगोपांग वैज्ञानिक अनुसन्धानपूर्ण वैद्यक पुस्तकों की अभी हमारे यहाँ बहुत कमी है। मुझे आशा है कि सिलाकारीजी इस कमी को बहुत कुछ अंशों में पूरी करने में सफल होंगे।"

× × ×

मौलवी चिरागुद्दीन साहब हकीम, मेम्बर—इण्डियन मेडीसन बोर्ड आफ़ सी० पी०, वाइस प्रेसीडेन्ट-म्यूनिस्पिल कमेटी, सागर, लिखते हैं—

"मैंने प्रस्तुत पुस्तक के भिन्न भिन्न अंशों का विचारपूर्ण अध्ययन किया और निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ—

प्राचीन और अर्वाचीन कतिपय ग्रन्थों में इस बीमारी (मोतीझिरा) के सम्बन्ध से जो भी ज्ञातव्य विषय प्राप्त हुए हैं, वे प्रायः अस्पष्ट, फुटकर और वर्तमान समय की आवश्यकताओं की दृष्टि से कहीं अत्यधिक अपूर्ण जिज्ञासायुक्त हैं। अतएव उनसे पूर्णतः लाभान्वित होना, इस विषय के जिज्ञासुओं (विद्यार्थियों) और मातृभूमि भारत की दीन-हीन सन्तान की सेवा करनेवाले वैद्य महानुभावों के लिए अत्यधिक कठिन प्रतीत होने लगता है। परन्तु हर्ष की बात है कि अब "वैद्यक-संसार" सदैव के लिए हमारे नवयुवक, उत्साही और अनुभवशील वैद्य पं० हरिवल्लभ सिलाकारीजी का कृतज्ञ और उपकृत रहेगा कि आपने मोतीझिरा के सम्बन्ध से अपनी नवीन रचना में उसके पृथक्-पृथक् सम्पूर्ण शीर्षकों पर प्रकाश डालकर उसे पूर्ण कर दिया है। यदि यही कह दिया जाय कि "आपने इसे पूर्ण ही नहीं, वरन् सर्वाङ्ग पूर्ण बना दिया है" तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

अतएव पण्डितजी समस्त वैद्यों और हकीमों की ओर से केवल धन्यवाद के ही नहीं वरन् सच्ची प्रशंसा के भी पात्र हैं।

मैं अनुरोध करूँगा कि प्रत्येक हकीम और वैद्य महानुभाव अपने-अपने औषधालय में मोतीझिरा की बीमारी के लिए इस "मन्थरज्वर-चिकित्सा" नामक पुस्तक को अपना पथ-प्रदर्शक बनाने में कुछ भी आनाकानी न करेंगे, और इससे लाभ उठाने की कोशिश करेंगे।"

× × ×

हिन्दीसाहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् लेखक पंडितप्रवर बाबूलाल मयाशंकरजी दुबे बी० ए०, काव्यतीर्थ, साहित्य-रत्न, दमोह सी० पी०, लिखते हैं—

"कविराज पंडित हरिवल्लभजी सिलाकारी शास्त्री वैद्य, विशारद रचित "मन्थरज्वर-चिकित्सा" नामक पुस्तक का अवलोकन किया। मन्थरज्वर के विषय में सम्पूर्ण जानने योग्य आवश्यक बातें आ गई हैं। मन्थरज्वर का इतिहास, जीवाणुवाद, कारण, पूर्वरूप, सम्प्राप्ति, लक्षण, उपद्रव, सप्तविधि-परीक्षा, साप्ताहिक चिकित्सा, उपद्रवों का उपचार, रोगी-परिचर्या, पथ्यापथ्य, आरोग्य हुए रोगियों का परिचय, अनुभूत औषधियों के प्रयोग और उनका निर्माणविधान आदि का बहुत ही उपयोगी वर्णन किया गया है। आपने यह पुस्तक सर्वथा मौलिक, वैज्ञानिक और नवीन पद्धति के अनुसार लिखी है। भारतवर्ष में भयङ्करता से व्याप्त व्याधि के प्रतिकार के लिये वैद्यों ही के लिए नहीं, किंतु सर्वसाधारण के लिए भी यह पुस्तक अत्यन्त हितकर है। सिलाकारीजी मन्थरज्वर के विशेषज्ञ (Specialist) हैं। मुझे स्मरण है कि कटनी में आज से पाँच वर्ष पूर्व मेरी पौत्री भारतीबाई जो मन्थरज्वर से पीड़ित थी, आपने अपनी कुशल चिकित्सा द्वारा नीरोग की थी। प्रस्तुत पुस्तक सिलाकारीजी की अनुभूत-चिकित्सा का भाण्डार है। आपका खोजपूर्ण परिश्रम प्रशंसनीय है। पुस्तक प्रत्येक गृहस्थ को अवश्य पढ़ना चाहिए।"